IV. छंद, अलंकार परिचय

(1) छंद

छंद उस रचना को कहते हैं जिसमें यति, गति, विराम आदि का निश्चित् स्थान हो । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिसमें अक्षरों, मात्राओं यति, गति, विराम आदि का विशेष नियम हो, उसे ही छंद की संज्ञा से अभिहित किया जाता है । इसका भाव है गीत, संगीत, लय, ध्वनि आदि ।

छंद मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं–वैदिक एवं लौकिक । वैदिक छंदों का प्रयोग केवल वेदों में ही मिलता है इनकी संख्या पांच हैं–गायत्री, पंक्ति, जगति, विराट् और त्रिष्टुप छंद । इनको अलौकिक छंद भी कहा जाता है । इसके विपरीत जिन छंदों का प्रयोग लौकिक साहित्य में हुआ है वे ही लौकिक छंद कहलाते हैं । इनके दर्शन संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि भाषाओं के काव्य ग्रंथों में होते हैं । लौकिक छंद के दो भेद हैं–वर्णिक छंद और मात्रिक छंद ।

वार्णिक वे छंद हैं जिनमें वर्णों की संख्या गिनी जाती है या जिनका निर्माण वर्णों के आधार पर किया जाता है । मात्रिक छंद उनको कहते हैं जिनमें मात्राओं की संख्या गणना होती है । अर्थात् जिनके निर्माण में मात्राओं को आधार बनाया जाता है ।

वार्णिक छंद के मुख्य तीन भेद हैं –सम, अर्धसम, विषम । सम वार्णिक छंदों के प्रत्येक चरण में वर्णों की संख्या समान होती है जबकि अर्धसम में पहले और तीसरे, दूसरे और चौथे चरणों में वर्णों की संख्या समान होती है । विषम वार्णिक छंद वे हैं जिनके चारों चरणों में वर्णों की संख्या विभिन्न हो ।

इसी प्रकार मात्रिक छंदों के भी तीन भेद हैं–सम, अर्धसम, विषम । सम मात्रिक छंदों के चारों चरणों में मात्राओं की संख्या समान होती है । अर्धसम में पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरणों में मात्राओं की संख्या समान होती है । विषम छंदों के चारों चरणों में मात्राओं की संख्या

विभिन्न होती है ।

सम वार्णिक छंद के आगे दो प्रकार हैं–साधारण और दण्डक । जिस सम वार्णिक के चारों चरणों में 1–26 तक और 27 से आगे वर्णों वाले सम छंदों को दण्डक कहते हैं । इसी प्रकार मात्रिक छंद के सम छंद के दो भेद हैं–साधारण और दंडक । साधारण छंद प्रत्येक चरण 1–32 तक दण्डक 33 से आगे मात्राएं हैं ।

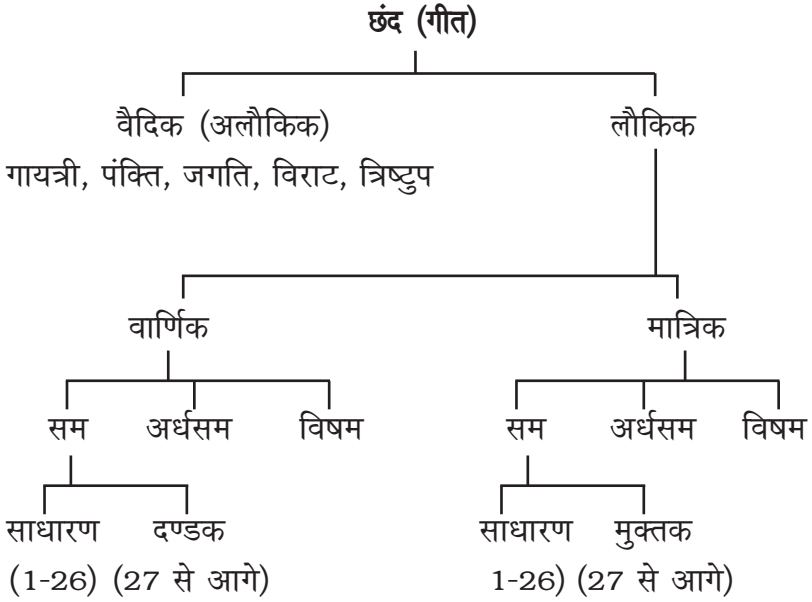

छंदों का काव्य में स्थान –

मानव जीवन में जन्म, नाम संस्कार विवाह आदि प्रत्येक शुभ अवसरों पर छंद या गीत गाये जाते हैं । छंदों या गीतों का मानव जीवन में ही नहीं अपितु पशु पक्षियों के जीवन में भी विशेष आकर्षण है । नदी की धारा में कलकल की ध्वनि सुनाई देती है । वृक्षों में मरमर का मधुर स्वर सुनाई देता है । हिरण-वीणा की मधुर ध्वनि को सुनकर छाती पर बाण सहन करता है । प्रभु को भी गीत प्रिय है । इसलिये सभी धार्मिक स्थानों पर गीतों द्वारा ही

परमात्मा की भावपूर्ण आरती की जाती है इसलिए गीत में अमिट शक्ति है। यह श्रोता के हृदय पर सीधा प्रभाव डालता है। इसलिये गीत सृष्टि के कणकण में व्यापक है। कविता में छंदों का उपयोग, महत्त्व और स्थान अधोलिखित दृष्टियों से होता है–

(1) भावों की अभिव्यक्ति को स्पष्ट और तीव्र रूप से प्रस्तुत करने के लिये।

(2) भावों के बिखराव में एक सूत्रता स्थापित करने के लिए।

(3) कविता में सजीवता लाने के लिए।

(4) कविता में रमणीयता और सौंदर्य की प्रतिष्ठा करने के लिए।

(5) कविता को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए।

(6) रस-निष्पत्ति में योगदान के हेतु।

(7) प्रेषणीयता लाने के लिए।

(8) कवि के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के लिए।

(9) उक्ति में पवित्रता की प्रतिष्ठा के लिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सृष्टि का उद्‌भव संगीत के द्वारा हुआ और इसका अंत भी शंकर के डमरू की मधुर गूंज से होगा। काव्य में इसका विशेष महत्त्व है। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर यदि दृष्टिपात करे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके लगभग 1000 वर्षों के लम्बे इतिहास में आधुनिक युग के अतिरिक्त पूर्व तीन कालों में कविता की सहायता से कवि अपने विचारों को स्पष्ट रूप से प्रकट कर देता है। दूसरे कम से कम शब्दों में व्यक्त करता है। तीसरे गीतिकाव्य का प्रभाव जहाँ पाठकों के हृदय पर सीधा पड़ता है, वह एक अमिट छाप छोड़ जाता है। निःसंदेह कविता में छंदों का विशेष स्थान है। छंदों के प्रभाव के कारण ही कविता में एक प्रकार की चमक उत्पन्न हो जाती है।

छंद गण तालिका

गण	स्वरूप	लक्षण	उदाहरण
1. मगण	ऽऽऽ	सर्वगुरु	माता जी
2. नगण	।।।	सर्वलघु	जनक
3. भगण	ऽ।।	आदिगुरु	कोमल
4. जगण	।ऽ।	मध्यगुरु	कृपालु
5. सगण	।।ऽ	अंत गुरु	करुणा
6. यगण	।ऽऽ	आदि लघु	करूणा
7. रगण	ऽ।ऽ	मध्य लघु	याचना
8. तगण	ऽऽ।	अंत लघु	आपान

।ऽ ऽऽ। ऽ।।। ऽ
य मा ता रा ज भा न स ल गा

मात्रिक छंद –

1. दोहा–

इसके प्रथम तथा तीसरे पद में 13 मात्राएं तथा दूसरे और चौथे पद में 11 मात्राएं होती हैं । इस प्रकार यह 24 मात्राओं वाला छंद होता है । जैसे–

ऽऽ ऽऽऽ ।ऽ ।। ऽऽ ।।ऽ । (13, 11 मात्राएं)
लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल ।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल ।।

2. चौपाई–

इस छंद के प्रत्येक चरण में 16 मात्राएं होती हैं । चरणांत में या तो दो लघु (। ।) या दो गुरु (ऽऽ) होते हैं । जैसे –

(16, 16 मात्राएं)

ऽ।। ऽ।। ऽ।। ।। ।। ।।। ।।। ।।ऽ। ।।। ।।
कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि कहत लखन सन राम हृदय गुनि ।
मानहु मदन दुंदभी दीन्ही मनसा विश्व विजय कह कीन्ही ।।

3. तोमर–

इस छंद के प्रत्येक पाद में 12 मात्राएं होती हैं और इसके अंत में क्रमशः गुरु लघु होता है । जैसे –

।।ऽ। ।।ऽ ऽ।ऽ ।।।ऽऽ ऽ। (12, 12 मात्राएं)
सुनु राम बिनती मोर मैं चरण लागूं तोर ।
गह लीजिए मम हाथ मैं हूँ नवाता माथ ।।

4. रोला–

इसमें 24 मात्राएं होती हैं और 11 व 13 मात्राओं के पश्चात् यति होती है । जैसे–

।।ऽऽ ।। ऽ । ऽऽ ऽऽ ऽ। ऽ (11, 13 मात्राएं)
जित देखूँ तित लाल, लाली मेरे लाल की ।
मैं भी हो गई लाल, लाली देखन मैं गई ।।

5. हंसगति (हंसगीत)–

इसके प्रत्येक चरण में 20 मात्राएं होती हैं । 11 एवं 9 पर यति होती है । जैसे–

।ऽ ।ऽ ऽऽ। ।।ऽ। ऽ ऽ (11, 9 मात्राएं)
भक्ति हिये में धार बलबीर की तू ।

6. हरिगीतिका –

इस छंद के प्रत्येक चरण में 28 मात्राएं होती हैं । चरणांत में लघु गुरु (।ऽ) होते हैं । 16 और 12 पर यति होती है । जैसे–

(16, 12 मात्राएं)
।।ऽ । ऽऽऽ ।ऽ ।। ।। ।ऽ ऽऽ ऽ ।ऽ
खग वृन्द सोता है अतः कल, कल नहीं होता है वहां ।

7. बैरवे–

इस छंद के पहले और तीसरे चरण में 12-12 और दूसरे तथा चौथे चरण में 7-7 मात्राएं होती हैं । इस प्रकार प्रत्येक पद में 19 मात्राएं हो जाती

हैं । सम चरणों के अंत में जगण (।ऽ ।) इसकी सुन्दरता को और भी बढ़ा देता है । जैसे–

।।ऽ ।। ।।।। ।। ऽ। ।ऽ। (12, 7 मात्राएं)
सब से मिल कर रह मन, वैर विसार ।
दुर्लभ नर तन पाकर, कर उपकार ।।

8. छपय–

इस छंद में रोला एवं रोला और उल्लाला छंदों का सुन्दर समन्वय होता है । प्रथम 4 पाद रोला और अंतिम 2 पाद उल्लाला के होते हैं । उल्लाला के दोनों पादों में 26 अथवा 28 मात्राएं होती हैं । जैसे–

जिसकी रज में लोट पोट कर बड़े हुए हैं । ┐ रोला
घुटने के बल सरक सरक कर खड़े हुए हैं ।। │
परम हंस, मम बाल्यकाल में सब सुख पाये । │
जिसके कारण धूल भरे हीरे कहलाये ।। ┘
हम खेले कूदे हर्षयुक्त जिसकी स्थायी गोद में । ┐ उल्लाला
हे मातृ भूमि तुम निरख मग्न क्यों हैं मोद में ।। ┘

9. कुण्डलियां–

जब दोहा और रोला दोनों छंद जुड़ जाते हैं तो कुण्डलियां छंद बन जाता है । इसमें छः पाद एवं 24 मात्राएं होती हैं । इस छंद की विशेषता यह है कि जिस शब्द से इसका आरम्भ होता है वही शब्द इसके अंत में भी आता है । आदि एवं अंत का चरण समान होता है । जैसे–

ऽऽ ।।ऽऽ। ऽ।।।। ऽ ।।ऽ। (24 मात्राएं दोहा)
साईं इस संसार में मतलब का व्यवहार ।
जब लग पैसा गांठ में, तब लग ताको यार ।।
तब लग ता को यार, यार मुख से नहीं बोले ।
ऽऽ ।ऽ ।ऽ। ऽ।।। ऽ ।ऽ ।ऽ (24 मात्राएं रोला)
पैसा रहा न पास, यार मुख से नहीं बोले ।।
कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई ।
करत बेगरजी प्रीति यार बिरला कोई साईं ।।

वार्णिक छंद–

10. विद्युन्माला –

यह आठ वर्णों का छंद होता है । इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः दो मगण तथा 2 गुरु होते हैं । जैसे –

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽऽऽऽ
मा मा गा गा विद्युन्माला

11. इन्द्रवज्रा –

इसके प्रत्येक चरण में 2 तगण 1 जगण एवं 2 गुरु पाये जाते हैं । प्रत्येक चरण में 5 व 11 पर यति होती है । जैसे–

ऽऽ।ऽऽ । ।ऽ । ऽ ऽ
हों इन्द्रव्रज्रा ततजा ग गा सो ।

12. उपेन्द्रवज्रा –

इसके प्रत्येक पाद में 1 जगण, 1 तगण, 1 जगण 2 गुरु होते हैं । जैसे–

।ऽ। ऽऽ ।। ऽ। ऽ ऽ
उपेन्द्र व्रज्रा जत जाग गा सो ।

13. भुजंगप्रयात–

यह छंद 4 यगण के योग से बनता है । इस प्रकार इसके प्रत्येक पाद में 12 वर्ण होते हैं । जैसे –

।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽ ऽ।ऽ ऽ
भुजंगा प्रयाता रचो चार या सो

14. द्रुतविलम्बित –

यह 12 वर्णों का छंद है इसके प्रत्येक पाद में क्रमशः एक रगण, दो मगण तथा एक रगण पाये जाते हैं । जैसे–

।। । ऽ।। ऽ । । ऽ। ऽ
द्रुत विलम्बित हो नभ भार सो ।

15. वसंततिलक –

यह 14 वर्णों का छंद होता है । प्रत्येक चरण में क्रमशः 1 तगण, 1 भगण, 2 जगण और 2 गुरु होते हैं । 8 व 14 वर्णों पर यति होती है । जैसे–

ऽ ऽ ।ऽ।ऽ।ऽ ।। ऽ ।ऽ ऽ
जानो वसंत तिलका तम जाज गा गा ।

16. शालिनी–

जिस छंद के प्रत्येक पाद में क्रमशः 1 मगण, 2 तगण और 2 गुरु हो उसे शालिनी छंद कहते हैं । यह 11 वर्णों का वार्णिक छंद होता है । जैसे–

ऽऽ ऽऽ ऽ ।ऽ ऽ ।ऽ ऽ
माता ता गा गामिली शालिनी है

17. शार्दूल विक्रीड़ित–

इसके प्रत्येक पाद में क्रमशः 1 मगण, 1 सगण, 1 जगण, 1 सगण, 2 तगण व 1 गुरु होता है । इसके प्रत्येक पाद में 19 वर्ण होते हैं । 12 व 19 वर्णों पर यति होती है । जैसे–

ऽ ऽऽ ।।ऽ। ऽ।।।ऽ ऽऽ। ।ऽ ।ऽ
जो होवे मसजास तातग रचो शार्दूल विक्रीडतम् ।

18. सोरठा –

सोरठा छंद दोहा छंद का उल्टा होता है । इस छंद के विषम पादों में (पहले और तीसरे चरण) में 11-11 और सम पादों में 13-13 मात्राएं होती हैं । जैसे–

। ।ऽऽ ।। ऽ। ऽऽ ऽऽ ऽ।ऽ
जित देखूँ तित लाल, लाली मेरे लाल की ।
मैं भी हो गई लाल, लाली देखन मैं गई ।।

19. सवैया –

सवैया छंद में 22 से लेकर 26 वर्ण होते हैं । इसमें कई प्रमुख भेद होते हैं । जैसे –

सुख शांति रहे सब ओर सदा अविवेक तथा अध पास न आवे ।
गुण शांति तथा बल बुद्धि बढ़े, हठ वैर विरोध घटे मिट आवे,
सब उन्नति के पथ में विचरें रति-पूर्ण परस्पर पुण्य कमावे
दृढ़ निश्चय और निरामय होकर निर्भय जीवन में जाय वाले ।

(2) अलंकार

काव्य साधना में भाव साधना और भाषा साधना दोनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भाषाज्ञान के अभाव में कोई भी कवि सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। शास्त्रकारों ने उसे कवि माना है जो चमत्कारपूर्ण भाषा में अपने विचार प्रकट कर सके। कवि भाषा का शिल्पी होता है। वह सबल और सुन्दर भाषा द्वारा ही अपने कथन में चमत्कार और अनुरंजन करने की शक्ति उत्पन्न करता है। यही चमत्कार एवं अनुरंजन उत्पन्न करने की क्षमता अलंकारों की जननी है। विभिन्न विद्वानों ने अलंकारों की विभिन्न परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं। जैसे –

काव्य के शोभाकरक धर्म अलंकार है। –दण्डी

भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण व क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली उक्ति अलंकार है।

–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

कुछ विद्वान् काव्य में अलंकारों को अवश्य मानते हैं और कुछ नहीं। इसके विपरीत कुछ अलंकारों को साधन के रूप में प्रयोग करना आवश्यक मानते हैं। अतः काव्य में अलंकारों के महत्त्व को निम्न बिंदुओं के अन्तर्गत वर्णित किया जा सकता है–

(1) आवश्यक तत्त्व है

(2) आवश्यक तत्त्व नहीं है

(3) उपयोगी साधन

(1) आवश्यक तत्त्व – कुछ विद्वानों का मत है कि अलंकार काव्य की आत्मा है। इनके बिना काव्य निर्जीव है। जिस प्रकार उष्णता के बिना अग्नि नहीं रह सकती उसी प्रकार अलंकार के बिना काव्य सर्जन नहीं हो सकता। इन लोगों का मत है कि जिस प्रकार आभूषण रमणी के सौन्दर्य को द्विगुणित कर देते हैं उसी प्रकार अलंकार भाषा एवं अर्थ की सौन्दर्य वृद्धि के कारण हैं। अलंकार हीन भाषा विधवा नारी के समान अनाकर्षक एवं त्याज्य होती है। इसके विषय में आचार्य केशव दास ने तो यहाँ तक कहा है–

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुवखन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न विराजई कविता बनिता मित्त।।

(2) आवश्यक तत्त्व नहीं है– इसके विपरीत कुछ विद्वानों का विचार है कि अलंकार काव्यसृजन के लिए आवश्यक नहीं है। क्योंकि जिसको परमात्मा ने सुन्दरता प्रदान की है उसको किसी अलंकार की आवश्यकता नहीं होती है। जैसे चांद और गुलाब का फूल बिना अलंकारों के भी शोभा देते हैं। इस आधार पर काव्य में अलंकारों का कोई स्थान नहीं है। इसके विषय में किसी उर्दूशायर ने सत्य ही लिखा है। जैसे–

नहीं मुहताज जेवर का जिसे खूबी ख़ुदा ने दी।
देखो कितना खूबसूरत लगता है चाँद बिन गहने।।

(3) उपयोगी साधन–कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि काव्य में अलंकारों का स्थान है परन्तु उस सीमा तक जहाँ तक वे कविता या काव्य के सौंदर्य की वृद्धि करने में सहायक होते हैं। अतः ये काव्य के लिये अनिवार्य न होकर उपयोगी साधन है न कि साध्य। जहाँ इनका बंधन नहीं है वहां उनकी सर्वथा उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। यदि भावानुकूल एक या दो अलंकारों का प्रयोग किया जाये तो कविता के लिये साधन सिद्ध होते हैं परन्तु यदि अलंकारों को बलात ठूंसा जाए तो वे उसके लिये बाधक ही सिद्ध होंगे। एक कहावत है–

वा सोने को जारिये जाते फाटे कान।

सारांश यह है कि कविता में अलंकारों का उसी सीमा तक उपयोग होना चाहिए जिससे उनके सौंदर्य में वृद्धि हो। वे साधनमात्र हैं, साध्य नहीं। साधन सदैव साधन ही रहेगा, साध्य नहीं बन सकता। अलंकारों की भरमार से कविता का नैसर्गिक सौंदर्य नष्ट हो जाता है। अतः स्वाभाविक रूप से आये अलंकार ही काव्य के लिये वांछनीय होते हैं। अतः इनका काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अलंकारों के भेद –

प्रायः अलंकारों को दो भेदों में बांटा जाता है– इसमें (1) शब्दालंकार तथा (2) अर्थालंकार है। जहाँ अलंकार शब्दों को चमत्कृत करते हैं उन्हें शब्दालंकार कहा जाता है। जैसे–अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि और जहाँ अलंकार अर्थों को अलंकृत करें उन्हें अर्थालंकार के नाम से जाना जाता है। जैसे– उपमा, रूपक, विभावना, विशेषोक्ति आदि। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से किया जाता है।

शब्दालंकार

(1) अनुप्रास अलंकार – जहाँ पद में एक या अनेक व्यंजनों की बार-बार आवृत्ति हो वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है । जैसे–

चारु चन्द्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल थल में ।

यह 'च' और 'ल' व्यंजन की बार-बार आवृत्ति हुई है । अतः यह अनुप्रास अलंकार है । इसके पाँच प्रकार हैं – छेका अनुप्रास, वृत्या अनुप्रास, श्रुत्या अनुप्रास, अंत्यानुप्रास, लाटानुप्रास ।

(2) यमक अलंकार –जहाँ समानाकार वाले विभिन्नार्थक शब्दों की आवृत्ति हो वहाँ यमक शब्दालंकार होता है । जैसे–

कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय ।

उहिं खाऐं बौराइ इहिं पाऐं ही बौराई ।।

यहाँ 'कनक' शब्द की दो विभिन्नार्थों –सोना एवं धतूरा में आवृत्ति हुई है । अतः यह यमक अलंकार है ।

(3) श्लेष अलंकार – जब एक शब्द एक ही बार प्रयुक्त हो परन्तु इसके एक से अधिक अर्थ निकले । वह श्लेष अलंकार कहलाता है । जैसे–

जो रहीम गति दीप कै, कुल कपूत कै सोई ।

बारे उजियारी करे, बढ़े अंधेरो होई ।।

यहाँ दीपक और कुपुत्र का वर्णन किया गया है । बारे और बढ़े शब्द दो-दो अर्थ दे रहे हैं । दीपक बारे (जलाने) और कुपुत्र बारे (बाल्यकाल) में उजाला करता है । ऐसे ही दीपक बढ़े (बुझने) और कुपुत्र (बड़े होने पर) अंधेरा करता है । अतः यह श्लेष अलंकार है ।

(4) वक्रोक्ति अलंकार – जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाए जिनमें बोल के अभिप्राय से विभिन्न अर्थ लिया जाये । वह वक्रोक्ति अलंकार होता है । जैसे–

को तुम ? है घनश्याम हम,

तो बरसो कित जाय ?

यहाँ 'घनश्याम' शब्द का अर्थ बादल और श्रीकृष्ण है । अतः यह शब्द ऐसा है जिससे बोलने वाला और सुनने वाले अभिप्राय के अनुसार दो-दो अर्थ

निकालते हैं । अतः इसे वक्रोक्ति अलंकार कहा जाता है । इसके दो भेद– श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति हैं ।

अर्थालंकार

(5) रूपक अलंकार – जहाँ पर उपमेय और उपमान का एक ही रूप हो जाए उसे रूपक अलंकार कहते हैं । जैसे–

मुख चाँद है ।

यहाँ मुख उपमेय और चाँद उपमान में समानता दिखाई गई है । मुख को चांद के समान सुन्दर कहा गया है । अतः उपमेय और उपमान एक ही रूप हो गये हैं । इसके भी तीन भेद–सांग रूपक, विरंग रूपक और परम्परित रूपक हैं ।

(6) उपमा अलंकार – जहाँ परस्पर विभिन्न उपमेय और उपमान की समता का वर्णन हो वह उपमा अलंकार होता है । इसके पूर्णोपमा और लुप्तोपमा दो भेद हैं । जैसे–

मुख चाँद-सा सुन्दर है ।

यहाँ पर मुख उपमेय और चाँद उपमान में समानता का वर्णन किया है और समान शब्द का प्रयोग करके मुख को चाँद के समान सुन्दर बतलाया गया है । इसके चार अंग – उपमेय, उपमान, वाचक शब्द, साधारण धर्म हैं ।

(7) उत्प्रेक्षा अलंकार – जहाँ उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाये अर्थात् उपमेय को मानो, मनू, मनहू, मनी, जनु, सी आदि वाचक शब्दों के द्वारा उपमान मान लिया जाये वह उत्प्रेक्षा अलंकार होता है । जैसे–

मुख मानो चाँद है ।

यहाँ मुख उपमेय से चाँद उपमान की सम्भावना की गई है । मानो शब्द का प्रयोग भी हुआ है । इसके मुख्यतः तीन भेद–वस्तुप्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा हैं ।

(8) अतिशयोक्ति अलंकार –जहाँ किसी वस्तु की प्रशंसा के लिये उसको अत्यंत बढ़ा-चढ़ा कर लोक-मर्यादा के विरुद्ध वर्णन किया जाये वह अतिशयोक्ति अलंकार है । जैसे–

बांधा विधु को किसने इन काली जंजीरों से ।

यहाँ मुख उपमेय बिधु उपमान केश को काली जंजीर का नाम देकर अत्यंत बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया गया है । अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है । इसके सात मुख्य भेद—रूपक अतिशयोक्ति, भेदक अतिशयोक्ति, संबंध-अतिशयोक्ति, असंबध अतिशयोक्ति, अक्रम अतिशयोक्ति, चपला अतिशयोक्ति,अत्यंत अतिशयोक्ति हैं ।

(9) विभावना – जहाँ कारण के बिना ही कार्य के हो जाने का वर्णन हो वहाँ विभावना अलंकार होता है । जैसे–

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।

कर बिनु करम करइ विधि नाना । ।

यहाँ बिना पैरों के चलना और कानों के बिना सुनना तथा बिना हाथ के सब कार्यों को करने का वर्णन किया गया है ।

(10) व्यतिरेक – जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय की श्रेष्ठता व्यंजित हो वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है । यह श्रेष्ठता दो आधारों पर वर्णित की जाती है–

(क) या तो उपमेय गुणों में उपमान से श्रेष्ठ हो ।

(ख) या उपमान स्वयं ही निकृष्ट हो । यथा–

साधु ऊंचे शैल समु किन्तु प्रकृति सुकुमार ।

यहाँ शैल उपमान की अपेक्षा साधु उपमेय में अधिक कोमलता बतला कर उसमें उत्कर्ष या महानता दिखलाई गई है ।

(11) व्याजोक्ति अलंकार – जहाँ प्रकट हुई सच्ची बात को किसी बहाने से छिपा लिया जाये वहाँ व्याजोक्ति अलंकार होता है । जैसे–

ललन चलन सुन पलन में अंसुआ झलके आय ।

भई लखन न सखिन हूँ झूठे ही जमुहाय । ।

जब एक नायिका को अपने नायक के विषय में यह पता चला कि वे शीघ्र ही विदेश जाने वाले हैं तो उसने झूठी ही जमुहाई लेनी आरम्भ कर दी ताकि उसकी सखियाँ उसका मजाक न उड़ायें ।

(12) स्वभावोक्ति अलंकार –जहाँ किसी वस्तु या दृश्य का अत्यंत

स्वाभाविक किन्तु चमत्कारपूर्ण वर्णन किया जाये वहाँ स्वभावोक्ति अर्थालंकार होता है। जैसे–

मया मोहे चाँद खिलौना ले दे।

यहाँ पर एक बच्चे की इच्छा का उसकी जाति के अनुसार स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

(13) अन्योक्ति अलंकार (विशेषोक्ति) – जहाँ कारण होते हुए भी कार्य होना वर्णित हो, वहाँ अन्योक्ति अलंकार होता है। जैसे–

देखो दो दो मेघ बरसते, मैं प्यासी की प्यासी।

जल से प्यास बुझ जाती है, किन्तु यहाँ अश्रु प्रवाहित होने पर भी प्यास वेदना नहीं बुझती। अतः यह अन्योक्ति अलंकार है।

विशेष – इसके तीन भेद – अनुकृनिमित्ता, उक्तनिमित्ता तथा अचिंत्य निमित्ता है।

(14) विरोधाभास – जब वस्तुतः विरोध न होते हुए भी विरोध दीख अथवा जब साथ न रहने वाली वस्तुओं को एक साथ रख दिया जाए तो विरोधाभास होता है। जैसे–

तंत्री नाद कवित्त रस सरिस राग रति रंग।

अनबूढे बूढे, तरे जे बूढे सब अंग।।

वाद्य संगीत, गेय संगीत, कविता और प्रेम के रंग में जो नहीं डूबे वे डूब गये और जो पूरी तरह डूब गये वे नहीं डूबे। इन कथनों में विरोध दिखाई पड़ता है। परन्तु विरोध है नहीं। वस्तुतः जिन्होंने इनका आनन्द लिया उन्हें आनन्द मिला और जो आनन्द न ले सके उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। अर्थात् उनका समय व्यर्थ गया।

(15) प्रतीप अलंकार – जहाँ उपमान को उपमेय बनाया जाए अथवा उपमेय से उपमान का निरादर कराया जाये वहाँ प्रतीप अलंकार होता है। जैसे–

सखि! मयंक मुख सम सुन्दर।

यहाँ उपमान चन्द्रमा का निरादर करने के लिए मुख चन्द्र के समान सुन्दर है न कह कर चन्द्रमा मुख के समान सुन्दर है, कहा गया है। मानो मुख चन्द्रमा से कोई श्रेष्ठ वस्तु हो। यहाँ प्रस्तुत या प्रसंग या विषय भावार्थ मुख है न कि चन्द्रमा।

भाग II (रचना)

(1) निबंध लेखन (Essay Writing)

1. गाय

गाय एक पालतू एवं दुधारू पशु है। गाय सफेद, काली, भूरी तथा चितकबरी कई रंगों की होती है। इसकी पूंछ लम्बी होती है। गाय अपनी पूंछ से अपने शरीर पर बैठने वाली मक्खियों को उड़ाती है। गाय के दो सींग होते हैं जिनसे वह अपनी रक्षा करती है।

भारतीय हिन्दू इसे 'गो-माता' कहते हैं तथा इसकी पूजा करते हैं। यह हमें दूध देती है। गाय का दूध आरोग्यवर्धक, स्फूर्तिदायक तथा शीघ्र पचने वाला होता है। रोगियों के लिए यह अत्यन्त लाभकारी होता हैं इसके दूध से दही, घी, मक्खन, मट्ठा व खोया बनता है। गाय का गोबर कच्चे घरों को लीपने, उपले बनाने व खाद बनाने के काम आता है। गाय का मूत्र अनेक रोगों में उपयोगी है।

इसी गाय के गोबर से एक गैस निकलती है जिसे मिथेन कहते हैं। मिथेन वही गैस है जिससे आप अपने रसोई घर का सिलेंडर चला सकते हैं और आवश्यकता पड़ने पर 4 पहियों वाली गाड़ी भी चला सकते हैं। गाय स्वभाव से भोली व सरल होती हैं यह घास, खली, चने व भूसा खाती है जिससे यह हमें अधिक दूध देती है। गाय के बछड़े बड़े होकर बैल बनते हैं। बैल हल चलाने व बैलगाड़ी चलाने में काम आते हैं। गाय के मरने के बाद इसकी खाल के जूते बनाए जाते हैं। इसके सींगों से सरेस तथा हड्डियों से खाद बनाई जाती है। इस प्रकार गाय हमारे बहुत काम आने वाला पशु है। अतः हमें इसकी सेवा व रक्षा करनी चाहिए।

2. हाथी

हाथी एक पालतू तथा विशालकाय पशु है। इसका शरीर बहुत बड़ा तथा भारी होता है। इसकी आँखें बहुत छोटी तथा कान बड़े-बड़े होते हैं। हाथी की पूँछ छोटी होती है परन्तु इसकी सूंड लम्बी होती है। यह अपनी सूंड से पेड़ों की डालियों को तोड़ता है। हाथी अपनी सूंड की सहायता से अपना

भोजन अपने मुँह तक पहुँचाता है तथा पानी पीता है ।

हाथी के मुँह में दो दाँत बाहर की ओर होते हैं जिनसे वह अपनी रक्षा करता है । इसके खाने के दाँत इसके मुँह के अन्दर होते हैं । हाथी के दाँत हमारे अनेक प्रकार से काम आते हैं । इसके दाँतों से भिन्न-भिन्न प्रकार की चूड़ियाँ व खिलौने बनाए जाते हैं । हाथी एक समझदार पशु है । इसको सिखाने पर यह बहुत कुछ सीख जाता है । महावत अंकुश से इसे वश में करता है । इसे स्थान व घटनाओं की खूब याद रहती है । इसलिए प्राचीनकाल में राजा लोग हाथी पर बैठकर युद्ध किया करते थे ।

हाथी बहुत अधिक भार को ढो सकता है । यह सवारी के काम आता है । यह पानी में तैर सकता हैं यह गन्ने खाने का बहुत शौकीन होता है । यह सर्कस में भी काम आता है । हाथी बहुत मूल्यवान तथा लाभदायक पशु है । मरने के बाद तो इसका मूल्य और भी बढ़ जाता है । हाथी दांत से अनेकों प्रकार की बीमारियों की दवा तैयार की जाती है ।

3. घोड़ा

घोड़ा एक पालतू पशु है । इसके चार पैर होते हैं । इसके पैर बहुत मजबूत होते हैं । इसके पैरों के खुर आगे से फटे नहीं होते हैं । इसके पैरों में नाल लगाई जाती हैं । यह बहुत तेज दौड़ता है । इसकी पूंछ लम्बी होती है तथा इसके सिर पर सींग नहीं होते हैं । इसकी गर्दन पर लम्बे-लम्बे बाल होते हैं जो बहुत सुन्दर लगते हैं ।

घोड़ा संसार के सभी भागों में पाया जाता है । घोड़ा हरी घास, चारा और चने का दाना खाता है । इसकी दो चमकदार और बड़ी आँखें होती हैं । घोड़ा सवारी के काम आता है । यह तांगें तथा बग्घी में जोता जाता है । प्राचीन काल में घोड़ा युद्ध के काम आता था । सैनिक और राजा-महाराजा लोग घोड़ों पर चढ़कर युद्ध-क्षेत्र में जाते थे । आजकल भी घोड़ा पुलिस में तथा सेना में उपयोग किया जाता है । दूल्हे को घोड़ी पर बैठकर जाना शुभ माना जाता है । राजा-महाराजा लोग घोड़ों पर बैठकर शिकार खेलने जाते थे ।

घोड़े कई रंगों के होते हैं । प्रायः ये सफेद, भूरे, चितकबरे तथा काले रंगों के होते हैं । घोड़ों की कई जातियाँ होती हैं, जिनमें अरबी घोड़े बहुत

प्रसिद्ध हैं । घोड़ा एक स्वामिभक्त पशु भी है । वह अपने स्वामी को अच्छी प्रकार पहचानता है तथा संकट पड़ने पर अपने स्वामी की रक्षा करने के लिए अपनी जान पर भी खेल जाता है । महाराणा प्रताप का घोड़ा 'चेतक' इस बात के लिए जगत प्रसिद्ध है ।

4. मोर

मोर भारत का राष्ट्रीय पक्षी है । यह बहुत सुन्दर पक्षी है । इसके लम्बे और सुन्दर पंख होते हैं । इसके पंख हरे, नीले तथा सुनहरे रंग के होते हैं । इसके पंखों पर छोटे-छोटे चकत्ते होते हैं । इनसे मोर की सुन्दरता बढ़ जाती है । इसका कंठ नीला होता है और इसके सिर पर एक कलगी होती है ।

मोर एक नृत्य करने वाला पक्षी है । इसका नृत्य बहुत मोहक होता है । जब वर्षा ऋतु में आकाश में बादल छा जाते हैं तो उन्हें देखकर यह मस्त होकर नाचने लगता है । किन्तु जब नाचते हुए यह अपने पैरों की ओर देख लेता है तो उन्हें देखकर अपना नाच बन्द कर देता है तथा रोने लगता है क्योंकि इसके पैर सुन्दर नहीं होते हैं । मोरनी के पंख नहीं होते हैं । मोर शरीर से भारी होता है इसलिए यह बहुत ऊँचा नहीं उड़ सकता ।

मोर के पंखों से पंखे बनते हैं । श्रीकृष्ण जी भी अपने मुकुट पर मोर-पंख लगाते थे । शरद् ऋतु में इसके पंख गिर जाते हैं, तब लोग इन्हें एकत्रित कर पाते हैं । मोर सांपों का शत्रु होता है । जहाँ मोर होते हैं, वहाँ साँप नहीं होते हैं । यह प्रायः पेड़ों पर रहता है । यह लाल मिर्च खाने का बहुत शौकीन होता हैं इसमें सुनने की तीक्ष्ण शक्ति होती है । यह हानिरहित पक्षी होता है । इसे सभी पसन्द करते हैं ।

5. दीपावली

हिन्दू धर्म में यों तो प्रतिदिन कोई न कोई पर्व होता है लेकिन इन पर्वों में मुख्य त्योहार होली, दशहरा और दीपावली ही हैं । हमारे जीवन में प्रकाश फैलाने वाला दीपावली का त्योहार कार्तिक मास की अमावस्या के दिन मनाया जाता है । इसे ज्योतिपर्व या प्रकाशउत्सव भी कहा जाता है । इस दिन अमावस्या की अंधेरी रात दीपकों व मोमबत्तियों के प्रकाश से जगमगा उठती है । वर्षा ऋतु की समाप्ति के साथ-साथ खेतों में खड़ी धान की फसल भी तैयार हो जाती है ।

इस पर्व की विशेषता यह है कि जिस सप्ताह में यह त्योहार आता है उसमें पांच त्योहार होते हैं। इसी कारण से सप्ताह भर लोगों में उल्लास बना रहता है। दीपावली से पहले धन तेरस पर्व आता है। मान्यता है कि इस दिन कोई- न-कोई नया बर्तन अवश्य खरीदना चाहिए। इस दिन नया बर्तन खरीदना शुभ माना जाता है। इसके पश्चात् आती है छोटी दीपावली, फिर आती है दीपावली। इसके अगले दिन गोवर्धन पूजा तथा अन्त में आता है भैयादूज का त्योहार।

अन्य त्योहारों की तरह दीपावली के साथ भी कई धार्मिक तथा ऐतिहासिक घटनाएं जुड़ी हुई हैं। इस दिन विष्णु ने नृसिंह का अवतार लेकर प्रह्लाद की रक्षा की थी। समुद्र-मंथन करने से प्राप्त चौदह रत्नों में से एक लक्ष्मी भी इसी दिन प्रकट हुई थी। इसके अतिरिक्त तीर्थंकर महावीर, महर्षि दयानन्द, रामतीर्थ, परमहंस, आचार्य विनोबा भावे का निर्वाण भी इसी दिन हुआ था। इसी दिन भारतीय संस्कृति के आदर्श पुरुष श्रीराम लंका नरेश रावण पर विजय प्राप्त कर सीता लक्ष्मण सहित अयोध्या लौटे थे। उनके अयोध्या आगमन पर अयोध्यावासियों ने श्रीराम के स्वागत के लिए घरों को सजाया व रात्रि में दीपमालिका की। ऐतिहासिक दृष्टि से इस दिन से जुड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाओं में सिक्खों के छठे गुरु हरगोविन्दसिंह मुगल शासक औरंगजेब की कारागार से मुक्त हुए थे। राजा विक्रमादित्य इसी दिन सिंहासन पर बैठे थे।

यह त्योहार बड़े उत्साह से मनाया जाता है। इस दिन लोगों द्वारा दीपों व मोमबत्तियाँ जलाने से हुए प्रकाश से कार्तिक मास की अमावस्या की रात पूर्णिमा की रात में बदल जाती है। इस त्योहार के आगमन की प्रतीक्षा हर किसी को होती है। सामान्यजन जहाँ इस पर्व के आने से माह भर पहले ही घरों की साफ-सफाई, रंग-पुताई में जुट जाते हैं। वहीं व्यापारी तथा दुकानदार भी अपनी-अपनी दुकानें सजाने लगते हैं। इसी त्योहार से व्यापारी लोग अपने बही-खाते आरम्भ किया करते हैं। इस दिन बाज़ार में मेला जैसा माहौल होता है। बाज़ार में तोरणद्वारों तथा रंग-बिरंगी पताकाओं से सजाये जाते हैं। मिठाई तथा पटाखों की दुकानें खूब सजी होती हैं। इस दिन खील-बताशों तथा मिठाइयों की खूब बिक्री होती है। बच्चे अपनी इच्छानुसार बम,

फुलझड़ियां तथा अन्य आतिशबाजी खरीदते हैं ।

इस दिन रात्रि के समय लक्ष्मी पूजन होता है । माना जाता है कि इस दिन रात को लक्ष्मी का आगमन होता है । लोग अपने इष्ट-मित्रों के यहाँ मिठाई का आदान-प्रदान करके दीपावली की शुभकामनाएं लेते-देते हैं । वैज्ञानिक दृष्टि से भी इस त्योहार का अपना एक अलग महत्व है । इस दिन छोड़ी जाने वाली आतिशबाजी व घरों में की जाने वाली सफाई से वातावरण में व्याप्त कीटाणु समाप्त हो जाते हैं । मकान और दुकानों की सफाई करने से जहाँ वातवारण शुद्ध हो जाता है वहीं वह स्वास्थ्यवर्द्धक भी हो जाता है ।

कुछ लोग इस दिन जुआ खेलते हैं व शराब पीते हैं, जोकि मंगलकामना के इस पर्व पर एक तरह का कलंक है । इसके अतिरिक्त आतिशबाजी छोड़ने के दौरान हुए हादसों के कारण दुर्घटनाएं हो जाती हैं जिससे धन-जन की हानि होती है । इन बुराइयों पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है ।

6. स्वतंत्रता दिवस – पन्द्रह अगस्त

स्वतंत्रता दिवस को देश की स्वतंत्रता का जन्म दिवस भी कह सकते हैं । 15 अगस्त 1947 ई० को 755 वर्षों की परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़कर भारतवर्ष स्वतंत्र हुआ था । क्योंकि हमारे देश पर 565 वर्ष मुसलमानों और 190 वर्षों तक अंग्रेज़ों ने राज्य किया था । अतः स्वतंत्रता दिवस हमारे लिये सौभाग्य एवं प्रसन्नता का दिवस है । अंग्रेज़ों ने अपनी कूटनीति से भारत से श्रीलंका और बर्मा को अलग कर उन्हें स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित किया । भारत वर्ष के दो टुकड़े कर दिये एक भारत वर्ष और दूसरा पाकिस्तान । बंगाल को भी वे दो भागों में विभाजित करने के प्रयास में थे । परन्तु जनमत विरोध के कारण इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली । इसी दिन दिल्ली के लालकिले पर पहली बार यूनियन जैक के स्थान पर सत्य और अहिंसा का प्रतीक तिरंगा झंडा लहराया गया था ।

यह राष्ट्रीय पर्व प्रतिवर्ष प्रत्येक नगर में बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है । विद्यालयों में छात्र अपने इस ऐतिहासिक उत्सव को बड़े उल्लास और उत्साह के साथ आयोजित करते हैं । हमारे स्कूल में भी अन्य वर्षों की भाँति इस वर्ष यह उत्सव बहुत ही उत्साह के साथ मनाया गया । स्कूल के सभी छात्र

स्कूल के प्रांगण में एकत्रित हुए । यहाँ अध्यापकों ने उपस्थिति ली, जिससे यह मालूम हो गया कि कौन-कौन नहीं आया है । हालांकि कार्यक्रम आरम्भ होने के पश्चात् भी विद्यार्थियों का आना जारी था । उपस्थिति पूर्ण होने के पश्चात् मंच का संचालन कर रहे शिक्षक ने उन छात्रों से आगे आने को कहा जिन्हें कार्यक्रम के लिए चुना गया था । शिक्षक की इस उद्घोषणा के बाद कार्यक्रम के लिए चुनिंदा छात्र अन्य छात्रों से अलग हो चुके थे ।

इसके पश्चात् प्रधानाचार्य ने प्रभात फेरी में चलने के लिए विद्यार्थियों को संकेत दिया । स्कूल के छात्र तीन-तीन की पंक्ति बना कर सड़क पर चलने लगे । सबसे आगे चल रहे विद्यार्थी के हाथ में तिरंगा झण्डा था, उसके पीछे विद्यार्थी तीन-तीन पंक्तियों में चल रहे थे । सभी छात्र देशभक्ति से ओत-प्रोत गीत गाते हुए जा रहे थे । बीच-बीच में अचानक वे 'भारत माता की जय', 'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद-जिन्दाबाद के नारे बुलन्द आवाज में लगा रहे थे । इस प्रकार प्रभात फेरी नगर के प्रमुख चौराहों से होते हुए जिलाधीश के आवास के सामने से निकली । अन्त में प्रभात फेरी स्कूल परिसर में आकर रुकी । जहाँ ध्वजारोहण की तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं ।

ठीक आठ बजे स्कूल के प्रधानाचार्य ने ध्वजारोहण किया और उपस्थित सभी छात्रों ने तिरंगे को सलामी दी । इस अवसर पर राज्य के शिक्षामन्त्री तथा शिक्षा अधिकारी द्वारा भेजे गये संदेश पढ़कर सुनाये गये । इसके पश्चात् शुरू हुए खेल व सांस्कृतिक कार्यक्रम । सांस्कृतिक कार्यक्रम के तहत जलियांवाला बाग़ पर आधारित एक नाटक का मंचन किया गया । इसके अतिरिक्त कुछ छात्रों ने देश भक्ति से ओत-प्रोत अपनी रचनाएं सुनाई । कार्यक्रम के अंत में विभिन्न क्षेत्रों में प्रथम रहे छात्रों को क्षेत्र के प्रमुख समाजसेवी व स्वतंत्रता सेनानी श्री जसवंत सिंह ने पुरस्कार देकर सम्मानित किया और छात्रों के मध्य मिष्ठान वितरण हुआ ।

राष्ट्रीय स्तर पर इस पर्व का मुख्य आयोजन दिल्ली के लाल किले में होता है । इस समारोह को देखने के लिए भारी जनसमूह उमड़ पड़ता है । लाल किला मैदान व सड़कें जनता से खचाखच भरी होती हैं । यहाँ प्रधानमंत्री के आगमन के साथ ही समारोह का शुभारम्भ हो जाता है । सेना के तीनों अंगों जल, स्थल और नौसेना की टुकड़ियाँ तथा एन.सी.सी. के कैडिट सलामी देकर

प्रधानमंत्री का स्वागत करते हैं । प्रधानमंत्री लाल किले की प्राचीर पर बने मंच पर पहुँच कर जनता का अभिनन्दन स्वीकार करते हैं और राष्ट्रीय ध्वज लहराते हैं । ध्वजारोहण के समय राष्ट्र ध्वज को सेना द्वारा 31 तोपों की सलामी दी जाती है । इसके बाद प्रधानमंत्री राष्ट्र की जनता को बधाई देने के बाद देश की भावी योजनाओं पर प्रकाश डालते हैं । साथ ही पिछले वर्ष में घटित प्रमुख घटनाओं पर चर्चा करते हैं । भाषण के अंत में तीन बार वे जय हिंद का घोष करते हैं जिसे वहाँ उपस्थित जनसमूह बुलन्द आवाज में दोहराता है । लाल किले पर इस अवसर पर रोशनी की जाती है ।

7. गणतन्त्र दिवस – छब्बीस जनवरी

राष्ट्रीय पर्वों में 26 जनवरी का विशेष महत्त्व है । स्वतंत्रता से पूर्व इस दिन स्वतंत्र होने की प्रतिज्ञा दोहराई जाती थी । लेकित अब स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् इस दिन हम अपनी प्रतिज्ञा पर दृष्टि डालते हैं । अखिल भारतीय कांग्रेस के लाहौर में 26 जनवरी 1929 ई० को हुए अधिवेशन में सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया था कि ''पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना भी हमारा मुख्य लक्ष्य है ।'' अखिल भारतीय कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष पं. जवाहर लाल नेहरू ने रावी नदी के तट पर घोषणा की थी कि यदि अंग्रेज़ी सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहे तो इसके लागू होने की घोषणा 31 दिसम्बर 1929 ई० तक कर दे । अन्यथा 1-1-1930 ई० से हमारी मांग पूर्ण स्वाधीनता की होगी । इस घोषणा के पश्चात् कांग्रेस द्वारा तैयार किया गया प्रतिज्ञा पत्र पढ़ा गया ।

पूर्ण स्वतंत्रता के समर्थन में देश भर में 26-1-1930 ई० को तिरंगे ध्वज के साथ जुलूस निकाले गये और सभायें की गईं । इनमें प्रस्ताव पास कर प्रतिज्ञा की गई जब तक हम पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हो जाते हमारा स्वतंत्रता आंदोलन जारी रहेग । कोई कितनी बड़ी बाधा उत्पन्न क्यों न हो जाये लेकिन हमारा यह आंदोलन अब थमने वाला नहीं । इस आंदोलन के तहत स्वतंत्रता की वेदी पर अनेक लालों का रक्त चढ़ा, कइयों ने लाठी व गोली खाई और जेलों में जाना पड़ा । अंततः पन्द्रह अगस्त 1947 ई० को देश स्वतंत्र हो गया । भारतीयों का स्वतंत्रता का सपना आखिरकार साकार हो गया ।

26-11-1949 में भारतीय संविधान बनकर तैयार हो गया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर की अध्यक्षता में गठित समिति द्वारा तैयार भारतीय संविधान को लागू करने की तिथि को लेकर काफी विचार विमर्श किया गया। क्योंकि 26-1-1930 ई० को जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर अधिवेशन में यह घोषित किया गया था कि देश को स्वतंत्रता से कम कुछ स्वीकार नहीं होगा। यह एक ऐतिहासिक दिन था। अंततः 26-1-1950 ई० को इसे लागू कर दिया गया। इस दिन भारत में प्रजातांत्रिक शासन की घोषणा की गई। देश के सभी नागरिकों को समान अधिकार दिये गये। देश के लिये यह दिन अत्यंत महत्त्व रखता हैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा निर्मित भारतीय संविधान में 22 भाग, 7 अनुसूचियां तथा 395 अनुच्छेद हैं। संविधान में स्पष्ट किया गया है कि भारत समस्त राज्यों का एक संघ होगा।

जनता में उत्साह और प्रेरणा जागृत करने के उद्देश्य से गणतंत्र दिवस के अवसर पर केन्द्र सरकार सहित सभी राज्य सरकारों की ओर से कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। देश की राजधानी में यह समारोह विशेष रूप से मनाया जाता है। गणतंत्र दिवस के एक दिन पहले शाम को राष्ट्रपति देश के नाम संदेश देते हैं। गणतंत्र दिवस की सुबह इंडिया गेट स्थित अमर जवान ज्योति का अभिवादन कर इस अवसर पर आयोजित कार्यक्रम की शुरुआत होती है। अमर जवान ज्योति का अभिवादन प्रधानमंत्री द्वारा किया जाता है। इसके कुछ देर पश्चात् राष्ट्रपति इस अवसर पर सैनिकों द्वारा निकाले जाने वाली परेड की सलामी लेने के लिए इंडिया गेट के पास ही स्थित मंच पर आते हैं। जहाँ उनका सेना के तीनों अंगों के सेनाध्यक्षों द्वारा स्वागत किया जाता है। इसके पश्चात् वह मंच पर बना आसन ग्रहण करते हैं। इस अवसर पर राष्ट्रपति द्वारा सैनिकों को उत्कृष्ट कार्य के लिए सम्मानित भी करते हैं।

तब आरम्भ होती है गणतंत्र दिवस की परेड। इसमें सबसे पहले जल, थल और वायु सेना के वे अधिकारी होते हैं, जिन्हें परमवीर चक्र, अशोक चक्र, शौर्य चक्र आदि से सम्मानित किया जाता है। इसके बाद सेना के तीनों अंगों की टुकड़ियां आती हैं। सीमा सुरक्षा बल, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, भारतीय तिब्बत सीमा पुलिस, केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल सहित अन्य अर्द्ध सैनिक बलों की टुकड़ियां भी परेड में शामिल होती हैं। परेड में सेना व

अन्य अर्द्ध सैनिकों के बैंड भी शामिल होते हैं, जो राष्ट्रीय धुन बजाते हैं। इसके पश्चात् सरकारी उपक्रमों सहित राज्यों की संस्कृति व उपलब्धि को दर्शाती झांकियाँ निकलती हैं। परेड के अंत में स्कूली बच्चे करतब दिखाते हैं।

राजपथ से आरम्भ होने वाली यह परेड पहले इंडिया गेट, कनाट प्लेस, मिन्टो रोड़ होते हुए लालकिले जाती है। लेकिन पिछले एक-दो वर्षों से आतंकवादी गतिविधियों एवं सुरक्षा कारणों से इसका रास्ता बदल दिया गया है। अब यह इडिया गेट से बहादुरशाह जफर मार्ग होते हुए लाल किले पर पहुँचती हैं। परेड के अंत में वायु सेना के विमान तिरंगी गैस छोड़ते हुए विजय भवन सहित प्रमुख भवनों पर विशेष प्रकाश व्यवस्था की जाती है। उन्हें दुल्हन की तरह सजाया जाता है। इस दिन शाम को राष्ट्रपति द्वारा अपने निवास पर सांसदों, राजनीतिज्ञों, राजदूतों तथा अन्य गणमान्य लोगों को भोज दिया जाता है।

8. कबीरदास

जब जब होई धरम कै हानी। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा।।

—रामचरितमानस (बालकाण्ड)

संसार में जब-जब धर्म की हानि होती है और नीच, अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं, तब तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं।

कोई न कोई किसी देश की विशेषता होती है। भारतीय इतिहास इस बात का ज्वलंत उदाहरण है कि जब कभी इस पर विपत्तियों के घने बादल मंडराने लगे तो इस देश की रक्षा के लिए कोई न कोई दिव्य आत्मा का प्रादुर्भाव हुआ। जैसे रावण के अत्याचारों को समाप्त करने के लिए श्री राम और इसी प्रकार कंस के अत्याचारों को कर्म करने के लिए श्री कृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ। कबीर के आगमन से पूर्व भारत की दशा अत्यंत शोचनीय थी। वस्तुतः कबीर ऐसे युग में उत्पन्न हुए थे जब भारत में हिन्दू और मुसलमानों के दो ऐसे वर्ग थे जो एक दूसरे के सर्वथा विपरीत थे। एक मंदिर को, दूसरा मस्जिद को, एक पुराण को, दूसरा क़ुरान को, एक रहीम को दूसरा

राम को, एक कृष्ण को दूसरा करीम को, एक काशी को दूसरा काबे को, एक पूर्व को और दूसरा पश्चिम को झुक रहा था ।

कबीर के जीवनवृत्त के संबंध में मुड़े मुड़े मतिर्भिन्ना की उक्ति चरितार्थ होती है और विविध विद्वानों ने इस संदर्भ में पृथक्-पृथक् विचार व्यक्त किये हैं । निष्कर्ष यही निकलता है कि कबीर का जीवन काल 1398-1518 ई० तक माना जाता है । कबीर के समूचे काव्य का वर्णन 'बीजक' नामक ग्रंथ में है जिसका संपादन उनके शिष्य धर्मदास ने किया था । 'बीजक' के तीन भाग हैं—1. रमैनी, 2. सब्द, 3. साखी ।

कबीर की काव्यकला –

1. निर्गुण ईश्वर में विश्वास – ईश्वर निर्गुण निराकार है । कबीर का कहना है जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में रहती है और वह व्यर्थ ही उसे वन में ढूंढने के लिये भटकता फिरता है । उसी प्रकार राम घट-घट व्यापी है उसे बाहर ढूंढने की आवश्यकता नहीं । प्रियतम जिनके दिल में है उन्हें प्रतियाँ लिखना व्यर्थ हैं । कबीर के लिये राम, रहीम, केशव, करीम में कोई अन्तर नहीं जैसे कबीर ने लिखा है—

घट घट मेरा साईया, सूनी सेज न कोये ।

बलिहारी ता घट की, जा घट प्रगट होय ।।

वस्तुतः कबीर की भक्ति प्रेम-पूर्णिमा है, तारों भरी रजनी है, अरुणोदय की अनुरागवंती संध्या है, नंदनकानन की पारिजात वल्लरी है और मधु मास की मनोरम मंजरी है ।

2. गुरु गुणगान– गुरु ही ज्ञान प्राप्ति द्वारा प्रभु से मेल करवा सकता है । सतगुरु वही हो सकता है जिसने स्वयं मार्ग पा लिया है और जो संसार से ऊपर उठ चुका हो । अब जिसमें केवल परोपकार की लगन है । जैसे—

सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब वन राय ।

सात समुंद की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय ।।

3. ज्ञान द्वारा प्रभु प्राप्ति– मानव अज्ञान के कारण ही माया भ्रम अंधकार के चक्कर में फंसा रहता है । परन्तु ज्ञानज्योति से आत्मा व परमात्मा का सब भेदभाव मिट जाता है । ज्ञान ही प्रभु प्राप्ति का एक मात्र साधन है । अतः धर्म

का विज्ञानीकरण एवं विश्वीकरण ही संतों के चिन्तन की सब से बड़ी मौलिक उपलब्धि है ।

4. धार्मिक अंध-विश्वासों का विरोध – कबीर निर्भीक क्रांतिकारी तथा स्पष्ट वक्ता थे । उन्होंने अनेकों धार्मिक मूर्तिपूजा, तीर्थ, व्रत, रोज़ा, नमाज़ आदि कुरीतियों का घोर खंडन किया और मन की शुद्धता पर बल दिया । मूर्तिपूजा करने वालों को अंतर में बैठी मूर्ति से परिचय कराया, मंदिर जाने वालों को मन मंदिर की याद दिलाई । कर का मनका फेरने वालों को मन का मनका ला पकड़ाया, तीर्थों में भ्रमण करने वालों को सत्गुरु रूप तीर्थ के दर्शन करवाए, गंगा स्नान करने वालों को अंतःस्नान का पाठ चढ़ाया । व्रत रखने वालों को वास्तविक व्रत का महत्व बताया । इन अवतरणों के माध्यम से भक्ति अपनाने में प्रयत्नशीलों को भक्ति के मूल तत्त्व भावपूर्ण नाम का वरदान दिया । इस प्रकार भक्ति का भी इन्होंने विरोध नहीं किया अपितु उसे परिष्कृत रूप प्रदान कर सहज और स्वाभाविक बना दिया ताकि जन-सामान्य भावपूर्ण हृदय से बिना किसी आडम्बर के भी उसे अपना सके । जैसे कबीर हिन्दुओं को फटकारते हुए कहा–

पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूंजू पहार ।
ताते वह चक्की भली पीस खाय संसार । ।

इसी प्रकार कबीर ने मुसलमानों को भी फटकारा–

काकर, पत्थर जोरिके, मस्जिद लई बनाय ।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, बहिरा हुआ खुदाय । ।

5. सामाजिक आडम्बरों का खंडन – कबीर ने अपने युग के आडम्बरपूर्ण जीवन की घोर निन्दा की । समाज में दिखावा ही दिखावा रह गया था और वास्तविकता लुप्त हो गई । वस्तुतः कबीर ने कुशल वैद्य की भाँति समाज के रोगों का अनुसंधान किया और उनका उपचार किया । मंदिर का पुजारी हो या मस्जिद का मौलवी उसका भण्डा फोड़ा । उस समय समाज में जात-पात, छूतछात, उंच-नीच, हिन्दू मुसलमान आदि कुरीतियों का बहुत भेदभाव था ।

6. सांसारिक विषय वासनाओं की निन्दा– समाज में मांस, मदिरा, व्यवहार आदि कुरीतियों का सेवन अत्यधिक बढ़ गया था । कबीर ने इन्हें

रोकने के लिये इनकी निन्दा की और राम नाम का नशा ही चिरस्थायी बतलाया ।

7. मानवता का प्रचार – कबीर ने अवतारवाद, बहुदेवतावाद का घोर खंडन किया ओर कहा कि नर ही नारायण है । सारे मानव उस प्रभु की आकृति मात्र है । अतः मानव मात्र की सेवा ही प्रभु-पूजा है । मानवता के कल्याण में प्रभु की सच्ची भक्ति है । जैसे कबीर ने कहा–

वह झटका वह विसमिल कीनी दया दौऊ से भांगी ।

कहत कबीर सुनो भाई साधो आग दोऊ घर लागी । ।

8. रहस्यवाद – रहस्यवाद को धार्मिक शब्दावली में अद्वैतवाद कहा है । आत्मा- परमात्मा के एक रूप की अनुभूति को रहस्यवाद के नाम से पुकारा जाता है जैसे कबीर लिखते हैं–

जल में कुंभ कुंभ में जल है, भीतर बाहर पानी ।

फूटा कुंभ जल जलहिं समाना तत कहो गयानी । ।

9. नारी चित्रण– कबीर के अनुसार कनक व कामिनी प्रभुभक्ति में बाधा है । इन्द्रियों के वश में होने के कारण मानव मूलतः कंचन व कामिनी का शिकार हो जाता है । कबीर ने इसका विरोध नहीं किया परन्तु इसका परिहार किया जैसे–

नारी की झाईं परत, अंधा होत भुजंग ।

कबिरा तिस की कौन गति जो नित नारी के संग । ।

परन्तु कबीर ने सती व पतिव्रता नारी की मुक्त कंठ से प्रशंसा भी की । जैसे–

पतिव्रता मैली भली काली कुचित कुरूप ।

पतिव्रता के रूप पर वारो कोटि सरूप । ।

10. रसनिरुपण – कबीर ने शांत व शृंगार रसों का परिपाक किया । जैसे शृंगार रस का उदाहरण देखिए–

दुलहिन गावहुँ मंगलाचार ।

हम घर आए हो राजा राम भरतार । ।

11. अभिव्यक्ति सौदर्य – कबीर ने खिचड़ी अथवा साधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया । इनके शब्द सामाजिक विषमता का गरल पान करने वाले और भक्ति गणको, मस्तक पर धारण करनेवाले नीलकंठ भूतनाथ डमरू के शब्द थे जिनके श्रवण मात्र से प्रपंच बुद्धि लोग मौन धारण कर लेते थे । इनका काव्य छंद अलंकारों से उज्ज्वल है क्योंकि वे जन्मजात कवि थे । अतः छंद अलंकार तो इनकी पावन वाणी के चरण स्पर्श के लिये तरस रहे हैं । इनकी वाणी से दोहा, सोरठा आदि छंदों का उत्कृष्ट रूप मिलता है । 'लाली मेरे लाल की' नामक दोहे में अनुप्रास, यमक, उपमा आदि अलंकार नक्षत्रों की भांति देदीप्यमान हैं ।

अतः उपर्युक्त विवेचन विश्लेषण के आधार पर इतना ही कहना काफी होगा कि कबीर कवि थे । वे महान् थे । वे हिन्दू मुसलमान थे । वे अपढ़ विद्वान् थे । वे फक्कड़, अक्कड़, मस्तमौला, फक़ीर थे । वे पहुँचे हुए पीर थे । वे रूढ़िवादी दुर्गों को नष्ट करने वाले वीर थे । अहंकार एवं अनाचार को वे शत्रु मानते थे और उनमें एक अदम्य साहस एवं अखंड आत्मविश्वास था । वस्तुतः वे संतकाव्य के सूत्रधार थे । इसलिये यदि यह कहा जाये कि कबीर ही संतकाव्य है और संतकाव्य ही कबीर है तो इसमें कोई भी अत्युक्ति न होगी । वे जायसी, सूर, तुलसी आदि की भाँति एक उच्चकोटि के कलाकार एवं भक्त थे । हिन्दी साहित्य को उनकी देन अद्‌भुत अद्वितीय थी ।

संत तो हज़ारों हुए हैं, परन्तु कबीर ऐसे हैं जैसे पूर्णिमा का चांद–अद्‌भुत एवं अद्वितीय । जैसे अंधेरे में कोई अचानक दीया जला दे–ऐसा है यह नाम । जैसे मरुस्थल में कोई अचानक मरुद्यान प्रकट हो जाये ऐसा है अद्‌भुत एवं अनुपम उनका काव्य । अतः तुलसीदास ने इसके विषय में उचित ही कहा है–

जननी जनै कै भक्त जन, कै दाता कै सूर ।
नहिं तो जननी बाझ रहे, काहे गंवावे नूर । ।

इसके अतिरिक्त डॉ. हज़ारी प्रसाद ने भी लिखा है–

हिन्दी साहित्य के हज़ार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई भी लेखक उत्पन्न नहीं हुआ ।

9. सूरदास

सूर का जीवन काल 1478 ई० से 1583 ई० तक माना गया है। हरिराय के भाव प्रकाश में दिल्ली से चार कोस दूर स्थित सीही ग्राम में इनका जन्म स्वीकार किया। सूरदास जन्मांध थे या बाद में अंधे हुए। इस संबंध में निश्चित् रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक सूरदास के आत्मोल्लेखों का तथा वार्तासाहित्य की सामग्री का संबंध है उनसे वे जन्मान्ध ही सिद्ध होते हैं। जैसे–

करमहीन जन्म कौ आँधो, मो ते कौन न कारौं (बुरा)

अतः इस संबंध में कोई अंतिम निर्णय देना तो कठिन है फिर भी यह माना जा सकता है कि सूरदास जन्मांध थे। सूरदास की निम्नलिखित तीन प्रामाणिक कृतियां हैं–

1. सूरसागर – यह सूरदास की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसके दो भाग हैं – पूर्वार्ध एवं उत्तरार्द्ध दस स्कन्ध हैं। प्रथम में विनय, द्वितीय में भक्ति, तृतीय से अष्टम तक विष्णु के अवतारों एवं पौराणिक कथाओं का निरुपण है। नवम् स्कंद में श्रीकृष्ण के चरित्र एवं लीला का उल्लेख है और यही ग्रंथ का सबसे महत्वपूर्ण स्कंद है। वस्तुतः 'सूरसागर' का प्रतिपाद्य विषय कृष्ण लीला, कृष्ण भक्ति एवं कृष्ण चरित्र है। इसमें वात्सल्य एवं श्रृंगार का सुन्दर चित्रण हुआ है। इसका सबसे मर्मस्पर्शी स्थल भ्रमरगीत है। इसमें लगभग 5000 पद हैं। ''भागवत्'' सूरसागर का उपजीव्य ग्रंथ है। भागवत में राधा का नामोल्लेख नहीं जबकि सूर ने इसके बाल्यकाल से लेकर प्रौढावस्था तक का उल्लेख किया है। इस प्रकार इसमें भक्तिभावना एवं वात्सल्यवर्णन के दर्शन होते हैं। इन का विवेचन इस प्रकार किया जाता है–

करी गोपाल की सब होई।
जो अपने पुरुषार्थ मानत, अति झूठो है सोई।।
अँखिया हरि दर्शन की प्यासी।

जिस प्रकार तंत्री की कोमल मधुर झंकार सुनकर सर्पराज अपने दर्शन कार्य को भूलकर नृत्य मगन हो जाता है कुछ वैसे ही आलोचकगण सूरकाव्य में विभोर होकर अपनी व्यक्तिगत रुचि एवं दोष दर्शन की प्रवृत्ति को

अनायास भूल जाते हैं । सूरसागर में वात्सल्य के संयोग व वियोग पक्षों का उल्लेख किया गया है । जैसे–

संयोग पक्ष–

मैया मोहि दाऊ बहुत खिजाओ,

मोसो कहत मोल को लीनो, तू जसुमति कब जायो ।

वियोग पक्ष–

संदेशो देवकी सो कहियो

हौ तो धाय तिहारे सुतकी, कृपा करत ही रहियो ।

इस प्रकार से वात्सल्य की पावन प्रयस्विनी प्रवाहित की जैसी 'न भूतो न भविष्यति' अतः 'तत्त्व तत्त्व सूरा कही' की यह उक्ति सत्य है । सूरदास ने जीवन के जिस क्षेत्र में वीणा बजाई उसमें इनकी कोई समता करने वाला नहीं । इन्होंने बाल कृष्ण को हिन्दी प्रासाद में अपनी रुचि के अनुसार हँसाया, रुलाया, खिलाया, झुलाया तथा नचाया है । पुरुष होते हुये भी उनके पास माँ का कोमल हृदय था । उन्होंने अपनी बंद आँखों से वात्सल्य का कोना-कोना झाँका है और उसके चित्रण में उन्हें पूर्ण सफलता मिली ।

2. सारावली– इसमें 1107 छंद हैं । जो इसी वृहद् गीत की कड़ियों के तुल्य हैं । इसमें होली के खेल के रूपक में सृष्टि रचना का वर्णन है । जैसे–

खेलत यह विधि हरि होरी हो ।

हरि होरी हो वेद विदित यह बात । ।

वस्तुतः यह सारा ग्रंथ एक वृहत होली के गीत रूप में रचित है ।

3. साहित्य लहरी– इसमें 118 पदों की एक छोटी सी रचना है । इसके अंतिम पद में सूरदास का वंशवृक्ष प्रस्तुत किया गया है जिसके अनुसार वे चंदबरदायी के वंशज सिद्ध होते हैं । यह दृष्य कूट पदों में रचा हुआ एक विशिष्ट ग्रंथ है । इसमें राधाकृष्ण की अनुराग लीला, नायिका भेद, अलंकार वर्णन का विवेचन किया गया है । जैसे–

किधौं सूर को सर लग्यों, किधौं सूर की पीर ।

किधौं सूर को पद लग्यों, बध्यो सकल शरीर । ।

अतः उपरोक्त विवेचन व विश्लेषण के आधार पर इतना ही कहना काफी होगा कि सूरदास भक्तिकालीन कृष्णकाव्य धारा के सर्वोच्च एवं सर्वोत्तम कवि हैं। वस्तुतः उनकी मथुरा तीन लोक से न्यारी है जोकि एकमात्र कृष्ण लीलाधाम है। सूर का समस्त काव्य विनय, वात्सल्य एवं शृंगार की त्रिवेणी है। सूर के सारे पदों में संगीत की ध्वनि इतनी सुमधुर रीति से समाई है कि वे पद संगीत जीते जागते अवतार से हो गये हैं। सूर के गीत सहृदय, संवेद्य हैं। उनमें एक अनुपम तन्मयता, तल्लीनता एवं भावानुभूति है। सुरकाव्य सहृदयों एवं संगीत रसिकों दोनों के लिये गले का हार है। सूर का समस्त काव्य हरिलीला का संकीर्तन है और अपने प्रभु के सम्मुख भावपूर्ण आरती है।

सूरदास की काव्य कला –

1. भक्ति भावना – सूरदास की भक्ति भावना का मेरुदंड पुष्टिमार्ग का सिद्धांत है। इसी को आधार मानकार उन्होंने वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव के गीत गाये और वे आत्मसमपर्ण को प्रधानता दी। कृष्णभक्त कवियों में कांताभाव में परकीया प्रेम को अधिक महत्व दिया है। इसमें किसी प्रकार की अश्लीलता व अनैतिकता की शंका करना व्यर्थ है। वस्तुतः परकीयाभाव आदर्शप्रेम का प्रतीक मात्र है और माधुर्यभाव की चरमपरिणति। पुष्टमार्गीय भक्ति में दीक्षित होने के उपरांत सूरदास जी ने दास्यभक्ति के गीत गाये जैसे–

प्रभु हौं सब पतितन कौ टीकौ।
हौ हरि सब पतितन कौं नायक।
जैसे राखे तैसेहि - रहौं।

2. विषय वस्तु में मौलिकता – भागवत् कृष्णकाव्य का उपजीव्य ग्रंथ है। मध्यकाल में भागवत् इतना लोकप्रिय हो गया था कि इसके बिना कवि कर्म अधूरा माना जाता था। लेकिन इससे यह अभिप्राय कदापि नहीं निकालना चाहिये कि इन कवियों ने केवल हिन्दी में उसका यथारूप अनुवाद मात्र कर दिया। भागवत् में कृष्ण के लोकरक्षक रूप पर अधिक बल दिया जबकि इन कवियों ने उससे लोकरंजन रूप को अधिक उभारा है। यहाँ तक

कि भागवत् में राधा का नामोल्लेख नहीं है किन्तु ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा-कृष्ण का विवाह दिखाया गया है ।

3. साम्प्रदायिक काव्य – यह सर्वथा साम्प्रदायिक काव्य है । इस शाखा के समस्त कवि पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर और सम्प्रदाय की सीमाओं को ग्रहण करके चले । आलोच्य काव्य में भ्रमरगीत की परम्परा साम्प्रदायिक दृष्टिकोण का प्रतीक है ।

और सब देव रंक भिखारी

4. कृष्ण को इष्टदेव मानना – भागवत् में कृष्ण को विष्णु का अवतार स्वीकार किया गया । उसके लोकरंजक रूप की अद्‌भुत आकृति भक्त के हृदय को मुग्ध कर देती है । सूर ने 'सूरसागर' में कृष्ण के सुन्दर रूप को दर्शाया है । जैसे–

अँखियाँ हरि दरशन की प्यासी ।

5. प्रकृतिचित्रण – सूर ने प्रकृति के आलम्बन व उद्दीपन रूपों का वर्णन अपने काव्य में किया । शृंगार रस की दृष्टि से कृष्णकाव्य अत्यंत भव्य एवं श्लाघनीय है । शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का बड़ा उत्कृष्ट वर्णन इन कृतियों में उपलब्ध होता है । शृंगार रस के अन्तर्गत बारह मासा एवं षट् ऋतु वर्णन भी सूर की सर्वश्रेष्ठ रचना है ।

6. नारी चित्रण – सूर ने भ्रमरगीत में नारी के कोमल हृदय को दर्शाया । इसमें शृंगार के संयोग एवं वियोग पक्षों का बड़ा ही मार्मिक उल्लेख किया गया । कृष्ण व गोपियों की क्रीड़ाओं का वर्णन किया । परन्तु जब कृष्ण मथुरा से चले जाते हैं तो उस समय की यशोधरा का विलाप अत्यंत मार्मिक है । तुलसी की कौशल्या और सूर की यशोदा का विरह एक जैसा है किन्तु सूर में जो अनोखी व्यंजना है वह तुलसी में नहीं । जब गोपियों को आशा एकदम छिन्न-भिन्न हो गई जैसे –

पिया बिनु साँपिन कारी रात ।

वे माधव माधव रटते-रटते स्वयं माधव हो गई ।

8. वात्सल्य वर्णन – सूर ने स्वयं वात्सल्य रस को माना । इस प्रकार हिन्दी साहित्य में 9 की अपेक्षा 10 रस हो गये । इसमें उन्होंने बताया कि किसी प्रकार श्रीकृष्ण गोपियों के घरों में माखन खाने के लिए घुस जाया करते

थे। कृष्ण के बाल्यकाल की सम्पूर्ण क्रीड़ाओं–कृष्णजन्म, नाल छेदन, नामकरण, वर्षगांठ, कृष्ण का पालने में झूलना आदि अत्यंत सूक्ष्म एवं विशद विवेचन किया जिससे लेखकों द्वारा लिख दिया गया– सूर ही वात्सल्य है और वात्सल्य ही सूर।

9. गीति काव्य – मुख्यतः सूरदास ने अपने काव्य में गीति, गीतिका, गेय पदों में लिखा। इनका काव्य गीतिकाव्य दिखाई देती है। वे हिन्दी साहित्य के कमनीय कलाकार हैं। उनके साहित्य में न तो कबीर के समान कलापक्ष की अवहेलना है और न ही तुलसी के समान मर्यादा व नैतिकता का आग्रह है। अतः गीतकाव्य की सभी विशेषता–भावात्मकता, रंगीनात्मकता, संक्षिप्तता, कोमलता, वैयक्तिक्ता इससे मिलते हैं।

10. कलापक्ष –सूरदास की शैली आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों की सुन्दर छटा इनके काव्य में अवलोकनीय है। दोहा, चौपाई, गीतिका, रूपमाला आदि छंदों के दर्शन इनके काव्य में होते हैं। कवि की भाषा ब्रज है और शैली रोचक व प्रभावोत्पादक है।

ऊपरलिखित विवरण से हम यह निष्कर्ष व निचोड़ निकालते हैं कि सूरदास कृष्णकाव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। वस्तुतः उनका वात्सल्य वर्णन तो हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है और यह हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है जिसके कारण सूरदास हिन्दी साहित्य में सदा के लिये अमर हो गये हैं।

10. सूर का वात्सल्य वर्णन

रस शब्द भारतीय संस्कृति और साहित्य के चरमविकास से संबंधित है। भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में 'रस' शब्द का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट तत्त्व के लिए होता है। खाद्यपदार्थों और फलों के क्षेत्र में रस मधुरतम तरल पदार्थ का द्योतक है। संगीत के क्षेत्र में कर्णेन्द्रिय द्वारा प्राप्त आनन्द का नाम रस है। चिकित्सा के क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट प्राणदायिनी औषधियों को रस कहा जाता है। अध्यात्म के क्षेत्र में स्वयं परमात्मा को रस घोषित किया गया है। इसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी काव्य के आस्वादन से प्राप्त आनंदानुभूति को ही रस

की संज्ञा दी गई । अस्तु, काव्यानंद ही रस है ।

हमारे मन में नाना भाँति के भाव उठते रहते हैं । मन के विकारों को भाव कहते हैं । परन्तु कुछ स्थायी भाव ऐसे होते हैं जो सामान्यतः सुप्तावस्था में प्रत्येक व्यक्ति में रहते हैं । इन स्थायी भावों या रसों की संख्या सूरदास के अविर्भाव से पूर्व नौ मानी जाती थी । कहने का भाव यह है कि काव्य में रसों की संख्या नौ थी जैसे शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत और शांत । परन्तु महाकवि सूरदास ने सर्वप्रथम 10वें रस का काव्य में आविष्कार किया जिसको वात्सल्य रस के नाम से पुकारा जाता है । सूर ने वात्सल्य रूपी सागर की गहराइयों में समाकर अमूल्य मोतियों को अपने काव्य में सुशोभित किया है । वात्सल्य वर्णन से सूरदास का एकाधिकार इस पंक्ति से दृष्टिगोचर होता है ।

सूर ही वात्सल्य है और वात्सल्य ही सूर है

सूरदास के पिता एवं छः भाई युद्धों में काम आये । इसलिये सूरदास अकेले रह गये । ज्ञानमार्गी कवियों की खंडन मंडन की नीति और सूफियों की मनस्वी शैली का प्रभाव सूरदास के जीवन पर पड़ा ।'सूरसागर में वात्सल्य वर्णन के लगभग 700 पद इसी प्रसंग पर है । इनको निम्नलिखित दो भागों में विभक्त किया गया है– (1) संयोग वात्सल्य, (2) वियोग वात्सल्य ।

संयोग वात्सल्य –पुत्र को पालने में झुलाना और उसे लोरियां कह कर सुलाना । मातृ जीवन का मधुरतम और सहजतम प्रसंग है । इस प्रसंग को सूर ने कितने सरल रूप में व्यक्त किया है –

(1) **यशोदरा हरि पालने झुलावै**
हलरावै दुलरावै (प्यार करना) मलहावे (हाथ फेरना) ।
जोई सोई कछु गावै ।

(2) **कान्ह चलत पग द्वै द्वै धरनी ।**
जो मन में अभिलाष करत है सो पावत नंद धरनी ।।

(3) **सोभित कर नवनीत (माखन) लिए ।**
घुटरुन चलत रेनु (धूल) तनु मंडित दधि लेप किये ।

अब बाल श्री कृष्ण धीरे-धीरे बाल हठ पर उतरने लगते हैं । जरा देखिए –

(4) **मैया हौं चंद खिलौना लै हौं ।**

बाल कृष्ण जिद्द पर अड़ जाते हैं और कभी–

(5) **आज मैं गाय चरावन जैहो ।**

वृन्दावन के भाँति भाँति फल अपने करते खहयो ।

अब यशोदा कहती है कि –

(6) ऐसी बात कहो जनि (मत) वार (बालक) देखो अपनी भाँति ।

तनिक तनिक पद चलियो कैसे आवत ह्वै है राति ?

तेरो कमल बदन मुक लहौ घूमत धामहि (घूम माँझ में)

अब कृष्ण कहते हैं–

(7) तेरो सौ मोहि भूख न लागत धूपहि नहिं कुछ नेक ।

सूरश्याम प्रभु कहयो न मानत परियो अपनी टेक ।।

दूध पीने से मन चुराते हैं यशोदा चोटी बढ़ने का प्रलोभन देकर उन्हें फुसलाना चाहती है–

(8) **कजरी का पय पियहु लाल जासो तेरी बेनि बढे ।**

जैसे देखि और ब्रज बालक त्यौ बल वैसे चढै ।

कृष्ण माता के बहकावे में आकर दूध पीने लगते हैं । दूध पीते हुए जब उन्हें पर्याप्त समय हो जाता है तो वे चोटी को देखते हुए बोले–

मैया कबहु बढ़ेगी मेरी चोटी ।

किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी ।।

अब यशोदा के पास क्या उत्तर था ? निरुत्तर हो गई और उनकी प्रिय वस्तु कितना स्वाभाविक और बाल सुलभ चित्रण है ? बाल हठ के साथ साथ माता का स्नेह स्निग्ध हृदय दर्शनीय है । कृष्ण, बलराम आदि के साथ खेलने जाया करते थे । बलराम ने कृष्ण से यह कहा कि तुझे तो दाई से पैसे देकर मोल लिया हैं तू यशोदा से उत्पन्न नहीं हुआ । कृष्ण रोने लगे और रोते-रोते माँ से शिकायत करने लगे–

(9) **मैया मोहि दाऊ बहुत खिझाओ ।**

मोसो कहत मोल को लीनो, तू जसुमति कब जायो ।।

बालक की नटखट प्रवृत्ति का कितना स्वाभाविक चित्रण है? जरा देखिए। पुत्र की चंचलता एवं हठ देखकर माता प्रसन्न होती है। अंत में पुत्र को प्रसन्न करने के लिए कह बैठती है कि मैं ही तेरी माता हूँ, तू ही मेरा पुत्र है। मातृ हृदय की इतनी सुन्दर व्यंजना भला और कहाँ मिल सकती है? माता ने बहुत समझाया कि मैं ही तेरी माँ हूँ परन्तु कृष्ण को विश्वास कहाँ? अन्त में माता को कितनी बड़ी सौगंध खानी पड़ी।

सुनो कान्ह बलभद्र जवह (बातूनी) ही तो धूत।
मोहि गोधन की सौ हो माता तूँ पूत।

(1) मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो।
भोर भये गैयन के पाछे, मधुवन मोहि पठाओ।

(2) मैं जान्यो यो घर अपना इस दोखे में आयो।
देखत गोरस में चींटी को कारण को कर नायो।

(3) कहन लगी अब बढि बात।
ढाढो मेरी तुमहिं बंधायो तनकहिं माखन खात।।

वियोग पक्ष – यशोधा को कृष्ण से बहुत प्यार था। वह पल भर भी अपने पुत्र को अलग नहीं करना चाहती थी। परन्तु मानव जीवन का मंच विधाता ने सुख और दुःख के तन्तुओं से बनाया है। भाग्य की रेखा जिस प्रकार रथ के पहिए की भाँति ऊपर नीचे घूमती है। इसी प्रकार सुख एवं दुःख की स्थितियाँ भी अपना फेरा लगाती रहती है। दुर्भाग्य से एक दिन वह भी आ पहुँचा जब अक्रूर कृष्ण को मथुरा ले जाने के लिए आ गये। माता-पिता के लिये गोप गोपियों के लिये यह अवसर बहुत अवसाद तथा पीड़ा का था। इसी प्रसंग में सूर ने वात्सल्य के वियोग पक्ष का निरुपण किया और यह वर्णन अत्यंत मार्मिक है। यदि सूर ऐसा न करते और कृष्ण को मानव की स्थिति से ऊपर उठाकर भगवान् बना देते तो वह काव्य न होकर केवल भक्ति चर्चा ही होती। यशोदा नंद को मथुरा से कृष्ण के साथ लाने के लिये कहती है। लेकिन जब नंद अकेले आ जाते हें तो वह उन्हें धिक्कारती है तथा कहती है कि वे तो दशरथ ही थे जो पुत्र वियोग में तड़फ-तड़फ कर जीवन दे बैठे और एक तुम

हो जो पुत्र को छोड़कर मुझे यहाँ देखने आए हो। कृष्ण की प्रिय वस्तुएं अब भी उन्हें शूल के समान प्रतीत हो रही है। दूध, नवनीत आदि कृष्ण की प्रिय वस्तुएं अब भी यशोदा को बहुत उदीप्त करती है तो इन वस्तुओं को याद करके कहती है–

मेरे कुँवर कान्ह बिनु सब वैसे ही धरऊ रहै।

यशोदा मथुरा से आने वालों तथा जाने वाले प्रत्येक पथिक से कहती है–

संदेशो देवकी सौ कहियो।

ह्वौ तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।

इस भाँति यशोदा के हृदय की व्याकुलता चरमसीमा को स्पर्श कर जाती है। यशोदा देवकी के पुत्र की कौन होती है? उसने तो एक धाय की भाँति कृष्ण का पालन पोषण किया है फिर भी माता की ममता का सजीव चित्रण हुआ है। अतः किसी आलोचक ने सत्य ही कहा है–

सूर का वात्सल्य वर्णन विश्व साहित्य में अद्वितीय है।

वस्तुतः पुरुष होते हुये भी उनके पास माँ का कोमल हृदय था। उन्होंने बंद आँखों से वात्सल्य का कोना-कोना झाँका है और उसके चित्रण में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। इसलिये एक हिन्दी कवि ने कितना सुन्दर लिखा है –

किंधो सूर को सर लग्यौ, किंधो सूर को तीर।

किंधो सूर को पद लग्यो, बिन्ध्यो सकल शरीर।।

इसी प्रकार एक हिन्दी कवि ने यह भी लिखा है–

सूर सूर, तुलसी ससि उड़गण केशव दास।

अब के कवि खद्योत सब जहुं तहुं करत प्रकाश।।

अस्तु, कहना चाहिये कि सूर ने वात्सल्य रस की जैसी पावन पयस्विनी प्रवाहित की वैसी न भूतो न भविष्यति। सूर ने हिन्दी साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में वात्सल्य का बेजोड़ चित्रण किया है। तुलसी जी ने श्रीराम का बालवर्णन तो किया परन्तु वह सूर के समक्ष ठहर नहीं सके। इस प्रकार अनेक कवियों ने वात्सल्य पर लिखा परन्तु इस क्षेत्र में सूर का स्थान

सर्वप्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ है। अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने सत्य ही कहा है–

वात्सल्य और शृंगार का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया उतना किसी अन्य कवि ने नहीं।

संस्कृत साहित्य में केवल बाल्मीकि ही ऐसे पुरुष हुए हैं जो बालवर्णन कर सके, परन्तु सूर के समक्ष उनका वर्णन भी नहीं ठहर सका। महाकवि बाल्मीकि के पश्चात् किसी भी कवि ने यदि वात्सल्य भाव से तन्मय होकर शिशु के अधरों को परखा उसकी तोतली मधुरतम वाणी को सुना, उसकी धुलि-धुसरित देह को प्रेम में गद्‌गद् होकर देखा तो सूर ने केवल सूर ने ही।

सूरदास ने जीवन के जिस क्षेत्र में वीणा बजाई उसमें इनकी कोई समता करने वाला नहीं है। इन्होंने बालकृष्ण को हिन्दी प्रासाद में अपनी रुचि के अनुसार हँसाया, रुलाया, खिलाया, झुलाया तथा नचाया है। इनकी अपनी पैनी पर्यवेक्षण शक्ति द्वारा इन्होंने मानव जीवन के दोनों वात्सल्य और संयुक्त अंगों की समागम व्याख्या की है। इस क्षेत्र के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंग को अपनी लेखनी की नाक से सजा दिया।

11. मेरा सर्वप्रिय कवि –तुलसीदास

कवि केसरी, हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोच्च कवि, राम के अनन्य भक्त, लोकनायक, भारतीय संस्कृति के उन्नायक, भारत हृदय, भारती कंठ, माँ भारती के भव्य भास्कर, भक्त शिरोमणि, गोस्वामी तुलसीदास को कौन हिन्दी प्रेमी नहीं जानता? आपकी कीर्ति का आधार स्तम्भ 'रामचरितमानस' महाकाव्य है जोकि हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है। इसी कारण तुलसीदास जी को नामादास ने 'कलिकाल का बाल्मीकि' स्मिथ ने मुगलकाल का सबसे बड़ा व्यक्ति, ग्रियर्सन ने बुद्धदेव के बाद सबसे बड़ा लोकनायक आदि विभिन्न सम्मानित उपाधियों से विभूषित किया है। अतः एक आलोचक ने उचित ही कहा है–

वस्तुतः हिन्दी साहित्य में तुलसी का वही स्थान है जो उपवन में प्रथम पुष्प का, माला में प्रथम मनके का और आकाश में प्रथम नक्षत्र का होता है।

भक्त कालीन अन्य भक्त कवियों की भाँति तुलसीदास के जन्म एवं जन्म स्थान पर अभी तक प्रश्नवाचक चिह्न आयुक्त है। इसके विषय में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचार प्रस्तुत किये हैं। परन्तु अब ही मानना उचित है कि उनका जन्म सोरो में हुआ और बाद में वे राजापुर में आये। उनका जन्म 1497 ई० में माना गया है। उनके पिता का नाम आत्मा राम दूबे और माता का नाम हुलसी था। वे माता-पिता द्वारा बचपन में ही त्याग दिये गये। यहाँ तक कि उन्हें उदरपूर्ति के लिए भिक्षावृत्ति को साधन बनाना पड़ा। किन्तु आगे चल कर हनुमान मंदिर में आश्रय प्राप्त हो गया। उनका विवाह रत्नावली से हुआ। कहते हैं कि विवाह के दो वर्ष पश्चात् उनके एक पुत्र भी हुआ जिसका नाम तारापति रखा। एक दिन उनकी पत्नी अपनी मायके चली गई और तुलसीदास भी पीछे-पीछे चले आये। इसके पश्चात् रत्नावली तुलसीदास को फटकार लगाई–

लाज न आबत आप को दौरे आएहुं साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा काहै मैं नाथ।।
अस्थि चर्ममय देह मम तामे ऐसी प्रीति।
जो होती श्रीराम महै होती न तो भवभीति।।

1623 ई० में लगभग 126 वर्ष की आयु में तुलसी का शरीर जर्जर हो गया। इस प्रकार वृद्धावस्था का चित्रण इस प्रकार है–

पाँय पीर, पेट पीर, बाहु पीर, मुँह पीर।
जरजर सकल सरीर पीर भई है।। –कवितावली

कोई कहता है कि कोढ़ से उनकी मृत्यु हुई और कोई कहता है प्लेग के कारण हुई। उनकी मृत्यु चाहे किसी भी कारण से हुई हो। परन्तु वे अंतिम क्षण तक पूरे होश में रहे और राम नाम उनकी जीभ पर रहा। मृत्यु के कुछ समय पूर्व उन्होंने निम्नलिखित छंद कहा–

राम नाम यश बारिन कै, भयहुं चाहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अब ही तुलसी सौन।।

राम के नाम का यश बखान कर अब मैं चुप होना चाहता हूँ। तुलसी के मुख में अब तुलसी और गंगाजल डालो। इन शब्दों के साथ यह महापुरुष

एवं विश्वविख्यात कवि सदा के लिये मौन हो गये । जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

सम्बत सोलह सौ अस्सी, असी गंग के तीर ।

श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर । ।

वस्तुतः तुलसीदास हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि थे । अतः प्रसिद्ध इतिहासकार विसेट स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'महान् अकबर' में लिखा है–

वह कवि हिन्दी कविता कानन में सब से बड़ा वृक्ष है । वे अपने समय में भारत में सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे । यहाँ तक कि उन्हें अकबर से बड़ा कहा जाता है ।

तुलसीदास ने निम्नलिखित 12 ग्रंथों की रचना की जो कि इस प्रकार से हैं–रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, कृष्णगीतावली, दोहावली, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, रामलला, वैराग्य संदीपनी, रामज्ञाप्रश्न ।

अस्तु, इतना ही कहना प्रचुर होगा कि तुलसी को हिन्दी साहित्य में वही स्थान प्राप्त है जो संस्कृत साहित्य में कालिदास को, बंगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ ठाकुर को एवं उर्दू अदब में ग़ालिब को है । वे वस्तुतः इन कवियों की भांति विश्वविख्यात कवि हैं जैसे विजेन्द्र स्नातक लिखते हैं–

तुलसी हिन्दी कविता कानन में सबसे बड़ा वृक्ष है ।

तुलसीदास की काव्य कला–

1. भक्ति भावना – शील, शक्ति और सौंदर्य के समन्वित रूप रामभक्ति के आदर्श, कवि के इष्टदेव हैं । उनकी भक्ति सेवक सेव्य भाव की है । भक्त दास्यभाव से श्री राम की उपासना करता है । अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं–

तुलसीदास जी भक्तिमार्गी थे, अतः उनकी वाणी में भक्ति के गूढ़ रहस्यों को ढूंढ़ना ही अधिक फलदायक होगा । ज्ञानमार्ग के सिद्धान्तों को ढूंढ़ना नहीं

–गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ 60

2. राम को इष्टदेव मानना – राम भक्तों के एक मात्र इष्टदेव हैं । रामभक्तों ने उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में अपनाया है । कवियों ने इसी रूप को काव्य में प्रतिपादित किया है । इसमें सीता एवं राम के परस्पर प्रेम की

पावन प्रयस्विनी प्रवाहित हुई है । तुलसी की मर्यादा देखिए–

कर मुरली कटि काछनी भले बने हो नाथ ।

तुलसी मस्तक तब निवै जब धनुष बाण हो हाथ । ।

तुलसी अपने इष्टदेव राम की स्पष्ट घोषणा करते हैं–

शिवद्रोही ममदास कहावा । सो नर मोहिं सपनेहुँ नहि भावा । ।

3. समन्वय भावना – इस काव्य में निर्गुण एवं सगुण, शैव एवं वैष्णवी, ज्ञान-कर्म-भक्ति, पुरुषार्थ एवं भाग्य का सुन्दर समन्वय हुआ है । पुरुषार्थ एवं भाग्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत है–

करम प्रधान विश्व करि राखा । जो स करइ सो तज फलु चाखा । ।

–अयोध्याकाण्ड

तुलसी काव्य जनसाधारण का काव्य है क्योकि तुलसीदास राम के परम भक्त, समाज सुधारक, धर्मप्रचारक और कवि शिरोमणि हुये हैं । उन्होंने तत्कालीन परम्परा का विरोध करते हुये काव्य रचना के संबंध में स्वयं कहा है–

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा –बालकाण्ड

अर्थात् रघुनाथ कथा तुलसी ने किसी आश्रयदाता की प्रेरणा से नहीं लिखी है । अपितु अपने आत्मिक सुख के लिये इसका प्रणयन किया । किन्तु इतना होते हुये भी तुलसी काव्य सामाजिक काव्य है । भारतीय जनसमूह काव्य है । राजा रंक का प्रिय है । इसमें भारतीय समाज की प्राचीन परंपराओं को सुचारू ढंग से चित्रित किया गया है । आदर्श समाज, आदर्श व्यक्ति, आदर्श देश को जन्म दे सकता है । अतः तुलसीदास कलम का कुठार लेकर खड़े हुए और उन्होंने विघटनता और विषमता के विष वृक्षों को काट फैंका और जन-मन-गण की मनोभूमि में समन्वय के सुमन बिखेर दिये । अतः डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने सत्य ही कहा है–

उनका सारा काव्य समन्वय की विराट् चेतना है ।

मानस शुरू से आखिर तक समन्वय काव्य है ।

4. रस निरुपण – राम की कथा अत्यंत व्यापक है । मर्यादा पुरुषोत्तम राम का भक्त भी मर्यादावादी है । अतः राम काव्य में शृंगार के संयोग एवं

वियोग पक्षों का जितना मर्यादित दृष्टि से विवेचन हुआ है इसके अतिरिक्त मानस में वीर, शांत, करुणा, रौद्र आदि सभी रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। वस्तुतः तुलसी के 'मानस' एवं केशव की 'रामचन्द्रिका' में प्रायः सभी रसों के दर्शन होते हैं।

5. काव्य शैलियाँ– तुलसी भक्ति के क्षेत्र में ही लोकनायक नहीं कहे जाते हैं अपितु काव्य जगत् में वे लोकनायक व समन्वकारी कवि कहे जाते हैं। क्योंकि तत्कालीन सभी काव्य शैलियों का प्रयोग किया। जैसे 'रामचरित मानस' पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, रामलला में प्रबन्ध काव्य, विनय पत्रिका, गीतांजली और कृष्णगीतावली में गीतिकाव्य, कवितावली, दोहावली, वैराग्य स्वदिपनी, वैरव रामायण, रामाज्ञा प्रश्न में मुक्तक काव्य का प्रयोग किया है।

6. भारतीय संस्कृति–तुलसी का काल भारतीय संस्कृति के घोर पतन का काल था। समाज अपनी प्राचीन संस्कृति से विमुख हो रहा था और विदेशी संस्कृति की ओर शनैः शनैः अग्रसर हो रहा था। ऐसी स्थिति में तुलसी ने राम की कथा द्वारा भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल एवं उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया। अतः किसी आलोचक ने उचित ही मुखरित किया है कि यदि कोई पूछे कि भारतीय संस्कृति क्या है? तो उसके सामने 'रामचरितमानस' रख दो अर्थात् तुलसी का 'मानस' भारतीय संस्कृति का सजीव एवं साकार रूप है।

7. मानस की अद्भुत देन – तुलसी कृत 'रामचरितमानस' हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य एवं अमर कृति है। यह भारतीय संस्कृति का ज्वलंत उदाहरण है। इसके सभी पात्र आदर्श पात्र हैं। यह आज हमारे राष्ट्र में यह जन-जन का कंठहार बन गया है और इसी कारण तुलसी का घर-घर में वास है।

8. धार्मिक प्रचारक – तुलसीदास एक महान् स्रष्टा और जीवन द्रष्टा कवि थे। इन्होंने मध्यकालीन भारत की सम्पूर्ण चेतना को काव्यमयी वाणी दी उन्होंने पूर्ववर्ती दार्शनिक विचारधारों और सम्प्रदायों के परस्पर विरोध का कारण केवल सैद्धान्तिक नहीं माना अपितु सामाजिक वास्तविकताओं की परस्पर विरोधी परिस्थितियाँ भी थीं। उन्होंने सगुण, निर्गुण, ज्ञान भक्ति का उचित स्थान निर्धारित करते हुये उनके महत्व का प्रतिपादन किया–

सगुनहि अगुनहिं नाहि कछु भेदा । गावहि मुनि पुरान बुध वेदा । ।

—बालकाण्ड

9. समाज सुधारक – तुलसी ने उस काल में प्रचलित अनेकों कुरीतियों, जाँत-पाँत, छुआछूत, धार्मिक संकीर्णता आदि का घोर विरोध किया । उन्होंने बताया कि व्यक्ति और परिवार समाज की आधार शिलाएं हैं । आज का हिन्दू धर्म तुलसीकृत धर्म है और आज का हिन्दू राष्ट्र तुलसी निर्मित राष्ट्र है । जैसे तुलसीदास लिखते हैं–

कीरति, भनिति, भलि सोई भूति, सुरसरि सम सब कहँ हित होई ।

—बालकाण्ड

10. नारी चित्रण – उस समय मुसलमानी संस्कृति की भौतिकता का प्रभाव भारतीय समाज पर ही पड़ रहा था, बहु विवाह की प्रथा भी नारी के आदर्शमय का एक अभिशाप था । इसलिये राम काव्य में नारी के प्रति तुलसी की मानयता आदर्शमयी रही । तुलसी ने वर्णनात्मक नाटकीय, मनोवैज्ञानिक आदि विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया जोकि विषय के अनुरूप है ।

11. अभिव्यक्ति सौन्दर्य – रामकाव्य का सृजन उस काल की सभी भाषाओं में हुआ । तुलसी ने 'मानस' में साहित्यिक अवधी का प्रयोग किया और 'विनयपत्रिका', 'कवितावली' एवं गीतावली में ब्रज भाषा का प्रयोग किया । यहाँ तक कि भाषा का प्रसाद, ओज एवं माधुर्य और शब्दों की अभिधा, लक्षणा, व्यंजना के दर्शन 'मानस' में होते हैं । अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं–

भाषा पर जैसा अधिकार गोस्वामी जी का था, वैसा किसी भी हिन्दी कवि का नहीं । पहली बात तो यह ध्यान देने की है कि अवधी और ब्रज काव्य भाषा की दोनों शाखाओं पर उनका समान और पूर्ण अधिकार था ।

—गोस्वामी तुलसीदास पुष्ठ 134

मानस ही एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें वीरगाथाओं के छप्पये, संतकाव्य के दोहे, प्रेमकाव्य की दोहा चौपाई तथा इसके अतिरिक्त सोरठा, सवैया, कवित्त, विविध छंदों का प्रयोग किया गया है । अलंकारों की छटा तुलसी में सर्वत्र दर्शनीय है । उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा, दृष्टांत, उदाहरण आदि अलंकारों का प्रयोग इनके काव्य में किया गया जैसे उपमा का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभहि प्रिय जिमि दाम ।

तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।। —उत्तरकाण्ड

अस्तु इतना ही कहना काफी होगा कि तुलसी ने राम काव्य को चरम सीमा पर पहुँचा दिया जहाँ तक पहुँचने में कोई भक्त कवि अपने आप में समर्थ न कर सका । तुलसी ने प्रथम कार्य ज्ञान और भक्ति के समन्वय का ही किया क्योंकि धर्म पुरुष के हाथ पैर है, ज्ञान नेत्र हैं और भक्ति हृदय है । अतः कर्म और ज्ञान भक्ति की त्रिवेणी को मुमूर्ष राष्ट्र शरीर के पास ले जाने वाले थे भगीरथ तुलसीदास । हरिऔध जी ने अपने श्रद्धा सुमन यही कहकर चढ़ाए—

कविता करके तुलसी न लसे ।
कविता लसी पा तुलसी की कला ।।

12. मेरा सर्वप्रिय ग्रंथ —रामचरितमानस

कवि केसरी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपरि महाकाव्य है । यही कारण है कि 'रामचरितमानस' को लेकर कोई अभी तक ऐसी अन्य रचना नहीं हुई, जो तुलसीदास की उस गौरवमयी कृति के आगे प्रश्नचिह्न लगा सकी हो । इसका श्रीगणेश उन्होंने श्री राम की जन्मभूमि अयोध्या में रामनवमी के पावन दिवस पर 30-3-1574 ई० को किया ।

रामचरित संबंध काव्य को प्रायः रामायण कहे जाने की परम्परा रही है । किन्तु तुलसीदास ने अपने काव्य को 'रामचरितमानस' के नाम से पुकारा है क्योंकि कवि ने इसमें मानस रूपी सरोवर के रूपक के रूप में प्रस्तुत किया हैं ये चार वक्ता ही इसके चार घाट हैं और सात कांड इसके सात सोपान । वस्तुतः यह रूपक इसके नामकरण की सार्थकता सिद्ध करता है । इसका सृजन 2 वर्ष 7 मास 26 दिन में पूर्ण हुआ ।

1. संक्षिप्त कथा – कथा का मूलाधार बाल्मीकि रामायण है । परन्तु इसमें अनेक स्थानों पर परिवर्तन एवं परिवर्द्धन पर्याप्त मात्रा में किया गया है जिसमें कवि की मौलिक दृष्टि में उन्मेष दृष्टिगोचर होता है । इसके अतिरिक्त आनंद रामायण, अध्यात्म रामायण, श्रीमद्भागवत, विष्णु पुराण, शिव पुराण,

हनुमदाष्टक, प्रसंगराघव, रघुवंश, उत्तररामचरित आदि ग्रंथों का भी प्रभाव इस पर विभिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत महाकाव्य सात कांडों– बालकांड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड, एवं उत्तरकाण्ड का एक बृहदाकार महाकाव्य है। इसमें सर्वप्रथम कवि ने सरस्वती व गणेश की वंदना की है। इसके विषय में कहा गया है–

इसमें कथा को अनेक भूमिकाओं पर प्रस्तुत किया गया है। सारी कथा अनेक वक्ताओं और अनेक श्रोताओं के माध्यम से प्रस्तुत होती है, फिर भी इसकी प्रबंधात्मकता को कहीं कोई ठेस नहीं लगती। निर्झरिणी की भाँति कथा अनेक प्राचीन एवं नवीन कथानकों की पर्वतीय शाखाओं, दुर्गम घाटियों एवं अडिग चट्टानों में प्रवेश करती हुई आगे बढ़ती है। इसमें 1074 दोहे एवं सोरठे, चौपाइयाँ हैं।

1. साहित्यिक दृष्टि (महाकाव्य) – प्रस्तुत ग्रंथ हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपरि महाकाव्य है। इसलिये इसको शुक्ल जी ने नवरसों का राम रसायन, ग्रियर्सन ने उत्तरी भारत का बाइबल, महात्मा गांधी ने अद्वितीय ग्रंथ की सम्मानित उपाधियों से विभूषित किया है। इसमें महाकाव्य के समूचे तत्त्वों – कथानक, पात्र व चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल वातावरण, भाषाशैली आदि के दर्शन होते हैं। अतः यह एक विशिष्ट धर्मग्रंथ है, विशिष्ट आचार ग्रंथ है, विशिष्ट समाज-शास्त्रीय ग्रंथ है एवं विशिष्ट भक्ति ग्रंथ है जो श्रेष्ठ काव्य के माध्यम से महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसलिये डॉ० उदयभानुसिंह ने इसको एक भव्य महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित किया है।

आलोच्यकृति का सृजन केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं अपितु काव्यात्मक लक्ष्य भी कवि के सामने स्पष्ट रूप से विद्यमान था। इसकी ध्वनि निम्नांकित उक्तियों में मिलती है–

कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे। –बालकाण्ड

इस प्रकार हम देखते हैं कि जब श्रेष्ठ विचार रूपी जल की वृष्टि होती है, तब कविता रूपी श्रेष्ठ मोती एवं मणियों की सृष्टि होती है। परन्तु यह कविता की अव्यक्तावस्था है। कवि जब इन श्रेष्ठ विचार-मणियों को

युक्तिपूर्वक राम जैसे महान् चरित्ररूपी धागे में गूंथता है तभी वह निर्मल हृदय के सज्जनों के अन्तःकरण को सुशोभित करती है जैसे कि विवेच्य ग्रंथ मे हुआ।

2. सांस्कृतिक दृष्टिकोण – मानस भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल उदाहरण है। इसमें आदर्श परिवार, आदर्श दम्पति, आदर्श माता-पिता, आदर्श भाई आदि के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार अध्यात्मवाद का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी।
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।। –बालकाण्ड

इस संसार में चौरासी लाख योनियों में चार प्रकार के जीव स्वेदज, अण्डज, उद्भिज तथा जरायुज समूचे ब्रह्माण्ड में रहते हैं। उन सबसे भरे हुए इस समस्त संसार को श्री सीतराममय जानकर मैं करबद्ध प्रणाम करता हूँ।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि धर्म एवं भारतीय संस्कृति की स्थापना एवं रक्षा के लिये तुलसी के राम उपदेश के स्थान पर कर्म का मार्ग अपनाते हैं। आद्यांत हम उन्हें कर्मक्षेम में जूझते हुए पाते हैं। अपने कर्त्तव्य पालन में वे लोकमर्यादा की सभी विभूतियों का प्रकाशन करते हैं। जब बालि अपने छोटे भाई सुग्रीव पर अत्याचार करता है और भारतीय संस्कृति की मर्यादा को भंग करता है तो राम उसे भी दंडित करते हैं। मरणासन्न बालि जब राम को लांछित करते हुए कहते हैं–

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि व्याध की नाईं।।
मैं वैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।। -किष्किंधाकाण्ड

हे गोसाई! आपने धर्म की रक्षा के लिये अवतार धारण किया है। परन्तु मुझको व्याध की भाँति छिपकर मारा है। इस प्रकार मैं आपका शत्रु हूँ और इसके विपरीत सुग्रीव प्यारा। हे नाथ! आपने मुझे किस दोष के कारण मारा? तब श्रीराम इसका उत्तर देते हैं–

अनुज बधू, भगिनी, सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकई जोइ। ताहि बधें कछु पाप न होई।।

–किष्किंधाकाण्ड

हे दुष्ट! सुन छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्रवधु एवं कन्या–ये चारों

समान होती हैं। इस कारण जो व्यक्ति इनको कुदृष्टि से देखता है उसको मारने में कोई भी पाप नहीं होता है।

3. धार्मिक दृष्टिकोण – हरि के अवतार का कारण बताते हुए शिव पार्वती से कहते हैं–

जब जब होइ धर्म की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।
तब तब धरि प्रभु बिबिध सरीरा। हरिहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

–बालकाण्ड

जब जब धर्म का ह्रास होता है और इस पृथ्वी पर राक्षस एवं अभिमानी लोग अधिक हो जाते हैं तो प्रभु पापियों के विनाश और सारे सज्जन लोग की रक्षा एवं दुःख दूर करने के लिए इस पृथ्वी पर अवतार धारण करते हैं।

अतः धर्म की रक्षा में तुलसी के राम का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है। उन्हें लोक में पूरी तरह प्रतिष्ठित करने के लिए तुलसी ने अपने अवतारी राम को सभी मानवीय विभूतियों में पूरी तरह विभूषित किया है। वे कल्याणमय, दीनदयालु, दीनबन्धु, अनाथों के नाथ एवं अशरण शरण हैं। शील, शक्ति एवं सौन्दर्य के सागर हैं। इसी प्रकार प्रभु का उन्होंने निर्गुण व सगुण का सुन्दर समन्वय स्वीकार किया और दोनों में कोई भी भेद को न माना जैसे–

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि परान बुध बेदा।।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।। -बालकाण्ड

निर्गुण एवं सगुण में कुछ भी अंतर नहीं है। मुनि, पुराण, पंडित तथा वेद सभी का ऐसा कथन है जो निर्गुण, निराकार, अव्यक्त व अजन्मा है वही भक्त-जनों के प्रेम के कारण सगुण हो जाता है।

इसी प्रकार प्रभु के निराकार रूप का वर्णन भी दिव्य एवं अद्वितीय है जैसे–

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी वक्ता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।
असि सब भाँति अलौकिक करनी, महिमा जासु नहिं बरनी।। –बालकाण्ड

वह प्रभु बिना ही पाँव के चलता है, बिना ही कान के सुनता है, बिना ही

हाथ के अनेक प्रकार के कार्य करता है, बिना मुँह के समस्त रसों का आनंद लेता है और बिना ही वाणी के अत्यंत योग्य वक्ता है । वह तन के बिना ही स्पर्श करता है, बिना ही आँखों के देखता है एवं बिना ही कान के समस्त गंधों को सूंघता है । उसकी करनी सभी प्रकार से अलौकिक है कि एवं उसकी महिमा अकथनीय है ।

अतः इसको धार्मिक महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित करना उचित ही है । राष्ट्र की विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान इसमें आदर्शवादी एवं परंपरागत मान्यताओं के आधार पर प्रस्तुत किया गया है । अतः आचार्य शुक्ल जी का यह कथन उचित ही है–

आज राजा से रंक तक के घर में गोस्वामी जी का रामचरितमानस विराज रहा है और प्रत्येक प्रसंग पर इनकी चौपाइयाँ कही जाती हैं ।

3. सामाजिक दृष्टिकोण – सत्संग महिमा पर मानस के आरम्भ में ही प्रकाश डाला गया है–

बिनु सतसंग बिबेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।।
सतसंगत मुंद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ।।
संठ सुधरहिं संत संगति पाई । पारस परस कुघात सुहाई ।।
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं । फनिमनि सम निज गुन अनुसरहीं ।।

–बालकाण्ड

सत्संग के बिना ज्ञान नहीं होता और प्रभुकृपा के बिना सत्संग की प्राप्ति नहीं होती । सत्संग आनन्द एवं कल्याण का मूल है । इसकी प्राप्ति ही फल है और सब साधनों को तो फूल समझना चाहिये । सत्संग के प्रभाव से दुष्ट व्यक्ति भी सुधर जाते हैं जैसे पारसमणि के स्पर्श मात्र से लोहा भी सोना हो जाता है । यदि दुर्भाग्यवश सज्जन कुसंग में पड़ जाते हैं । तो वे वहाँ भी सांप की मणि के समान अपने गुणों का ही अनुसरण करते हैं ।

2. नारी चित्रण – तुलसी के काल में भारतीय नारी की दशा अति दयनीय थी । इसलिये उन्होंने पशु नारी एवं कुनारी को जीवन में बाधक माना । जैसे–

ढोल, गवाँर, शूद्र, पसु, नारी । ये सकल ताड़न के अधिकारी ।। –सुन्दरकाण्ड

ढोल, मूर्ख, शत्रु और नारी को अनुशासन में रखना चाहिये ।

सेवक, सठ, नृप, कृपन कुनारी । कपटी मित्र, सूत समचारी ।।–किष्किंधाकांड

दुष्ट नौकर, कृपण राजा बुरी स्त्री और कपटी मित्र ये चारों शूल के

समान दुःख देते हैं । परन्तु मानस में एक अन्य स्थान पर उन्होंने नारी की अत्यंत प्रशंसा की है । जैसे–

धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपदकाल परिखि अहिं चारी । । –अरण्यकांड

धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री इन चारों की विपत्ति के समय की परीक्षा होती है । एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं–

नारी निन्दा मत करो, नारी नर की खान ।
नारी से नर होत हैं, ध्रुव, प्रह्लाद समान । ।

4. राजनीति दृष्टिकोण – प्रस्तुत कृति में आदर्श राजा एवं राज्य की स्थापना के दर्शन होते हैं । इसमें वर्णित राजनीति आदर्श लोकतंत्रात्मक है । उसमें राजा के शासन की स्वीकृति भी है । रामराज्य तुलसी के अनुसार प्रत्येक वर्ण और हर एक आश्रम में रहने वाले से यही चाहते थे कि वह अपने वर्ण और आश्रम के धर्म का ठीक से निर्वाह करे ।

यही कारण है कि मानस धर्मग्रंथ होते हुये भी धार्मिक मंडियो की सीमा तोड़कर जन-जन का कंठाहार बन पाया है । इसलिये इसको प्रभावशाली आचार शास्त्र के नाम से पुकारा जाता है । अतः शुक्ल जी उचित ही लिखते हैं–

राम के बिना हिन्दू जीवन नीरस है, फीका है ।

5. समन्वय भावना – आलोच्य कृति में निर्गुण व सगुण का समन्वय, अद्वैत व द्वैत का समन्वय, भोग व त्याग का समन्वय, विद्या व अविद्या का समन्वय, कर्म व भाग्य का समन्वय किया गया है । इस संसार में कर्म का ही प्राधान्य है जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है । अतः हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने उचित ही कहा है–

उनका सारा काव्य समन्वय की विराट् चेष्टा है । मानस शुरू से आखिर तक समन्वय काव्य है ।

6. प्रमुख प्रतिपाद्य – मानस के प्रतिपाद्य के विषय में तुलसीदास जी ने लिखा है–

जेहि मंह आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना । ।

अर्थात् 'रामचरितमानस' के आरम्भ, मध्य और अंत तीनों में प्रभु राम की भगवत्ता का प्रतिपादन है । इस प्रकार तुलसी का मूल प्रतिपाद्य राम है । अतः इसके संबंध में कहा गया है–

स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा । —बालकाण्ड

इस प्रकार हम देखते है कि तुलसी ने राम के माध्यम से व्यक्ति, परिवार एवं समाज के लिये एक ठोस मर्यादा की स्थापना की है । अतः तुलसी आद्यांत मर्यादावादी कवि है । ये नायक राम ही तुलसी के प्रतिपाद्य हैं और समूची गाथा इन्हीं की गौरव, ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के संगम का संदेश देती है । प्रसिद्धि, कविता और सम्पत्ति वही कल्याणकारी है जो गंगा माता की भाँति सर्वकल्याणकारी है । अतः सर्वहित सम्पादन मानस का लाभ है । जिससे अपनाकर हिन्दू जाति अशक्ति से शक्ति की ओर अशांति से शांति की ओर अग्रसर हुई ।

7. सर्वजन काव्यत्व – विश्व के साहित्येतिहास में साहित्य के दो विभाग माने गये हैं– सुजन साहित्य तथा जन साहित्य । सुजनसाहित्य शिक्षित वर्ग के लिये और जनसाहित्य सामान्य वर्ग के लिये होता है । विश्वसाहित्य में ऐसी बहुत कम कृतियाँ है जो सबके लिये समान रूप से प्रिय हो । रामचरित मानस का नाम इस प्रकार की कृतियों में सर्वप्रथम है । अतः प्रस्तुत कृति में सुजनसाहित्य एवं जनसाहित्य का सुन्दर समन्वय हुआ है । अतः यह एक ऐसा ग्रंथ है जो भिखारी की कुटिया से लेकर राजमहलों तक की शोभा बढ़ाता है । अनपढ़ कृषक से लेकर काव्यशास्त्र के पंडितों तक यह समान रूप से प्रिय है ।

8. काव्यादर्श – निर्गुण-सगुण, ज्ञानभक्ति, आत्मा-परमात्मा, माया-ब्रह्मा, जीव-जगत् आदि का निरुपण करके 'मानस' को दर्शन एवं शास्त्र की विशेषताओं से भी युक्त किया है । यही नहीं स्थान-स्थान पर वे नीतिकार और उपदेशक की मुद्रा भी ग्रहण कर लेते हैं । तुलसी ने प्रभु को स्वतंत्र माना है । जीव को वे उस शुद्र की उपमा देते हैं जो पिंजरे में बंद है जिसे माया देवी ने अपने आकर्षणों की रस्सी में बांधा हुआ है । यहीं से उनके आचार दर्शन का भी पता चलता है कि जीव से उसका आशय क्या है । इन्होंने अपने भक्तों को कहा है कि जीव की जीवनचर्या परमात्मा की इच्छा के अधीन है । उसका सभी कुछ पूर्व निश्चित् एवं पूर्व निर्धारित है ।

काव्य रचना के समय तुलसीदास ने अपने निजी आदर्शों के साथ ही सहृदय या पाठक को भी सदा अपने सम्मुख रखा है । इसलिये उनका प्रायः

यही प्रयास रहा है कि वे जो कुछ लिखे सबकी समझ में आ जाये । इस तथ्य को मानस के आरम्भ में उन्होंने इस प्रकार स्पष्ट किया । तुलसीदास के लिए विमल कीर्ति के समान सरल कविता ही आदर्श है और उसे ही सुजान-प्रशंसा की दृष्टि से देखते हैं । इस प्रकार के काव्य को सुनकर शत्रु भी शत्रुता भूलकर प्रशंसा करने लगते हैं । इस प्रकार कवि काव्य की सार्थकता तभी स्वीकार करते हैं । जब पाठकों के लिये भी वह उपयोगी है । इस प्रकार कवि एवं पाठक के मध्य काव्य की स्थिति का स्पष्टीकरण तुलसी ने इस प्रकार किया है–

मणि, मणिक्य और मोती की वास्तविक शोभा सर्प, पर्वत और हाथी के मस्तक पर वैसी नहीं होती जैसी कि राजमुकुट और स्त्री के शरीर का संसर्ग पाकर होती है । जिस प्रकार उपयुक्त वस्तुएं अपनी उत्पत्ति स्थल पर शोभा न पाकर अन्यत्र शोभा पाती है, उसी प्रकार अच्छे कवियों की कविता भी उत्पन्न उनके हृदय से होती है । परन्तु उसका वास्तविक मान पाठक के द्वारा होता है । इसका तात्पर्य हुआ कि कविता स्वान्त सुखाय भी हो सकती है किन्तु इसकी सार्थकता एवं उत्तमता की कसौटी पाठक ही है ।

अतः काव्य के क्षेत्र में भी वे भक्ति से प्राप्त प्रभुकृपा को ही सर्वस्व मानते हैं । यद्यपि उनका विचार है कि सरस्वती जब कृपा करती है तभी स्वाति की बूंदों के रूप से सुविचार मति रूपी सीप में बरसते हैं और कविता रूपी मोती की उत्पत्ति होती है, फिर भी वाणी कृपा किसी को प्रेरणा से ही करती है, यह बात तुलसीदास स्पष्ट रीति से प्रतिपादित करते हैं ।

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच ।

9. अभिव्यक्ति सौन्दर्य – तुलसीदास ने मानस में साहित्यिक अवधी का प्रयोग किया । इसलिये मानस को अवधी भाषा का अनूठा महाकाव्य माना जाता है । गिरा उनके आगे हाथ बांध कर खड़ी रहती है । इसका आशय बस इतना ही है कि तुलसी भाषा लिखने में सर्वश्रेष्ठ एवं समर्थ कवि हैं । इनकी शैली रोचक एवं प्रभावोत्पादक है ।

मानस में छंद अलंकारों की छटा के दर्शन होते हैं । इसमें उपमायें वीचियाँ हैं, चौपाइयाँ कमल हैं, युक्तियाँ मुक्त शक्ति है । प्रस्तुत ग्रंथ सभी

प्रकार के छंद मानसरोवर की सुगंध है एवं भक्तजन मंडराने वाले भ्रमर हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार का एक उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत है–

लताभवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल, बिदु जलद पटल बिलगाइ।। –बालकाण्ड

दोनों भाई – राम व लक्ष्मण लताकुंज से बाहर आये, वे उस स्थल से ऐसे निकले मानो दो निर्मल चंद्रमा बादलों के पर्दे को हटाकर आकाश में चमक गये हों।

रामचरितमानस मानवजीवन का महाकाव्य है। इसके द्वारा गोस्वामी जी ने हमारी आध्यात्मिक एवं भौतिक समस्याओं के सुलझाने का प्रयास किया है। प्रस्तुत कृति ने अपने युग में एक महान् कार्य तो किया ही है, वह अब भी उतनी ही मूल्यवान एवं ताजी कृति है, जितनी तुलसी के काल में थी। यही गुण उस महाकाव्य एवं महाकृति की पदवी से विभूषित करता है।

इस प्रकार विवेच्यकृति के कारण तुलसी कर्म, ज्ञान एवं भक्ति के प्रयागराज बन गये। इनका मानस जन-जन का कंठहार बन गया। इसको हिन्दू जाति का सर्वप्रिय धार्मिक ग्रंथ माना जाता है। इसी कारण घर-घर में तुलसी का वास है और यह समूचे समाज द्वारा पूजे जाते हैं। तुलसी के कारण 'रामचरितमानस' अमर कृति बन गई है और 'रामचरितमानस' ने तुलसी को सदा-सदा के लिए अमर कर दिया है। अतः डॉ० श्याम सुन्दर दास ने लिखा है–

तुलसी रवि अरु सूर शशि उड़गन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहं तहं करत प्रकाश।।

हिन्दी साहित्य में तुलसी सूर्य के समान हैं, सूर चन्द्रमा के समान है, केशवदास तारागण के समान है। परन्तु आज के सब कवि जुगनू के समान है और वे जहाँ कहीं भी जाते हैं प्रकाश फैलाते हैं। अतः आलोचक सम्राट् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं–

यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला हिन्दी का सबसे बड़ा कवि कौन है तो उसका एककमात्र यही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारत हृदय, भारती कंठ, भक्त चूड़ामणि, गोस्वामी तुलसीदास। –गोस्वामी तुलसीदास पृ० 140

13. जयशंकर प्रसाद

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना ।
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर, जिसके आगे राह नहीं ।। —प्रेम पथिक

प्रस्तुत पंक्तियों में जयशंकर प्रसाद जी की उस पावन एवं पवित्र भावना की व्यंजना हुई है जो व्यक्ति को सदैव आगे बढ़ने की ओर प्रेरित करती है । अपनी साहित्यसाधना के पथ पर वे स्वयं निरंतर गतिशील रहे । अपने युग के अन्य प्रभावशाली युवकों को भी उन्होंने गति प्रदान की । वस्तुतः वे हिन्दी-साहित्य क्षेत्र में एक बहुमुखी एवं विराट् प्रतिभा लेकर अवतीर्ण हुए । वे आधुनिक काल के प्रमुख छायावादी कवि, नाटककार कथाकार एवं निबंधकार हैं । छायावाद के अन्य कवियों में सृजन की इतनी विविधता एवं सम्पूर्णता नहीं है । अतः छायावाद के अन्य कवियों की अपेक्षा इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व में अधिक सम्पन्नता, सम्पूर्णता एवं समग्रता के दर्शन होते हैं । इस प्रकार उनका महान् व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य में वरदान के समान उदित हुआ । वे भारतीय सांस्कृतिक जागरण के देवदूत थे । उनके व्यक्तित्व में बोद्धों की करुणा व आर्यों का आनन्दवाद था । हिन्दी साहित्य में प्रसाद का आगमन एक महान् घटना थी जिस भाँति युग युगांतों के उपरांत कुछ महान् पुरुष अवतार धारण करके वसुन्धरा पर अवतरित होते हैं वैसे ही हिन्दी साहित्य में प्रसाद जी का अवतरण हुआ । वस्तुतः हिन्दी साहित्य में तुलसी के पश्चात् दो ही ऐसी महान् विभूतियाँ दृष्टिगत होती हैं जिनमें अलौकिक प्रतिभा का आभास मिलता है उनमें से एक है—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और दूसरे जयशंकर प्रसाद जी ।

आपका जन्म 30-1-1890 ई० को काशी के प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न सुघनीसाहु परिवार में हुआ । प्रसाद के पितामह का नाम बाबू शिवरत्न और पिता का नाम बाबू देवी प्रसाद था । इनके पूर्वज तम्बाकू व सूरती का व्यापार करते थे और वे दयालु एवं दानी भी थे । इनके पूर्वज काशी नगर के गोवर्धन सराय मुहल्ला में रहते थे । प्रसाद जी का बाल्यकाल बड़े ही लाड़ प्यार से बीता । घर पर ही कवियों का जमघट प्रायः रहता ही था । प्रसाद को वहीं से कलात्मक संस्कार प्राप्त हुए । 5 वर्ष की आयु में संस्कार सम्पन्न कराने के निमित्त जयशंकर प्रसाद जी ने जौनपुर, चित्रकूट, उज्जैन आदि का भ्रमण

परिवार के अन्य सदस्यों के साथ किया ।

लेखक की आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई । 9 वर्ष की अल्पायु में उन्होंने 'अमरकोष' एवं 'लघुकौमुदी' कंठस्थ कर ली थी । 10 वर्ष की आयु में उन्होंने काशी के कवीन्स कॉलिज में प्रवेश दिलाया और वहाँ से प्रसाद जी ने आठवीं कक्षा पास की । पिता की मृत्यु के कारण 12 वर्ष की आयु में प्रसाद जी को स्कूल छोड़ना पड़ा । पं० मोहिनी लाल 'रससिद्ध' और दीनबंधु ब्रह्मचारी से प्रसाद जी ने संस्कृत, अंग्रेज़ी, पुराण, इतिहास, उपनिषद् आदि का गंभीर अध्ययन किया । आलोच्य लेखक ने 15 वर्ष ही देख पाये थे कि उनकी माता का निधन हो गया । इस प्रकार बड़े भाई शंभुरत्न की छत्र छाया में प्रसाद जी का जीवन बड़े सुन्दर ढंग से व्यतीत होने लगा; परन्तु वे 17 वर्ष के ही हो पाये थे कि बड़े भाई भी दिवंगत हुए । इस प्रकार उनके किशोर कंधों पर बहुत बड़ा दायित्व आ पड़ा ।

लेखक ने जब घर एवं व्यापार संभाला तो दोनों की ही स्थिति अति जर्जरित थी । ऋण का भारी बोझ और व्यापार बिखरा हुआ था । प्रसाद जी ने बड़े साहस से परिस्थिति को संभाला । धीरे-धीरे ऋण से मुक्त हुए और संतोष की सांस ली । 20 वर्ष की आयु में उन्होंने गोरखपुर में अपना विवाह किया । विवाह के 10 वर्ष उपरांत पत्नी का निधन हो गया । एक वर्ष के उपरांत दूसरा विवाह किया । परन्तु इनकी दूसरी पत्नी भी एक वर्ष के बाद एक पुत्र को जन्म देकर प्रसूत काल में पुत्र सहित परलोक सिधार गई । अब प्रसाद का हृदय क्रंदन कर उठा और उन्होंने कुछ शांति पाने की इच्छा से गया और पुरी की यात्रा की । अब भाभी के प्रबल आग्रह से लेखक को तीसरा विवाह करना पड़ा । श्री रत्नशंकर प्रसाद तीसरी पत्नी से प्राप्त संतान है । गौर वर्ण, गोल मुखाकृति, दांत सब एक पंक्ति में मध्यश्रेणी का कद, पुष्ट शरीर, आँखों पर चश्मा और हाथ में डंडा अत्यंत आकर्षक था प्रसाद का व्यक्तित्व । प्रसाद बहुत सौम्य एवं गंभीर स्वभाव के व्यक्ति थे । उन्हें कभी किसी से क्रोध करते हुए नहीं देखा । द्वेष उन्हें स्पर्श भी नहीं कर सकता था ।

प्रसाद जी स्वभाव से ही अध्ययनशील थे । काव्य एवं दर्शन के अतिरिक्त इतिहास एवं पुरातत्त्व उनके प्रिय विषय थे । उनका शास्त्रीय ग्रंथों का अध्ययन एवं ज्ञान असाधारण था । अनके धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रंथ तो उन्हें कंठस्थ हो गये थे । उनकी दिनचर्या भी साहित्यिक थी वह लगभग प्रतिदिन 6 घंटे स्वाध्याय एवं काव्य रचना में व्यतीत करते थे ।

जिस दिन ''कामायनी'' महाकाव्य की इति हुई प्रसादजी के चेहरे पर एक अपूर्व शांति विराज रही थी और उन्होंने कहा था–

कामायनी लिखकर मुझे संतोष है ।

इसके उपरांत प्रसाद जी को राजयक्ष्मा रोग हो गया । अतः होम्योपैथी और आयुर्वेदिक चिकित्सा का ही आश्रय लिया गया । परन्तु कोई लाभ न हुआ । वे अपने उपचार के लिये काशी से बाहर भी नहीं गये । इसी बीच चर्मरोग भी हो गया । अंततः 15-11-1937 ई० में 48 वर्ष की अल्पायु में प्रसाद जी का निधन हो गया । उनके निधन पर महाप्राण निराला जी ने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए कहा था–

किया मूक को मुखर, लिया कुछ दिया अधिकतर ।

पिया गरल पर किया जाति साहित्य को अमर । ।

प्रसाद जी सर्वतोमुखी प्रतिभा के स्वामी थे । उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा में मौलिक क्रांति उत्पन्न कर दी । वस्तुतः साहित्य की कोई भी विधा उनकी अलौकिक प्रतिभा से अछूती न रही । उनकी मुख्य कलाकृतियों का उल्लेख अधोलिखित रेखाओं में रेखांकित किया जाता है–

काव्य – कामायनी, झरना, आँसू, लहर, कानन, कुसुम, प्रेम पथिक, करुणालय, महाराणा का महत्व आदि ।

नाटक – चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त अजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी, राज्यश्री, विशाल, जनमेजय का नागयज्ञ, अग्निमित्र (अधूरा) आदि ।

एकांकी – सज्जन, कल्याणी, करुणालय आदि ।

भावरूपक – एक घूँट, कामना आदि ।

उपन्यास – कंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण) आदि ।

कहानियाँ – आकाशदीप, इन्द्रजाल, छाया, प्रतिध्वनि, आँधी आदि ।

निबंध – काव्य और कला आदि ।

अब हम प्रसाद जी के काव्य की मुख्य विशेषताओं का विवेचन-विश्लेषण अधोलिखित पंक्तियों में करते हैं–

'कामायनी' महाकाव्य को छायावाद के सर्वप्रथम सोपान से अभिहित किया जाता है । प्रस्तुत कृति में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है । इसमें

दिन-रात, अंधकार, पर्वत, नदी, सागर उषा आदि का विशद् वर्णन है । जैसे–

उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी-सी उदित हुई,

उधर पराजित काल-रात्रि भी जल में अंतर्निहित हुई । –आशासर्ग

आपके काव्य में नारी को दया, माया, ममता, त्याग, बलिदान, सेवा, समर्पण, अगाध-विश्वास आदि विभिन्न संज्ञाओं से अभिहित किया गया । उदाहरणतः प्रसाद जी ने कामायनी में अद्यांत श्रद्धा के गौरवमय गुणों का उल्लेख इस प्रकार किया है । जैसे–

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वासरजत नग-पग-तल में ।

पीयूष-स्रोत-सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में ।। –लज्जासर्ग

रचनाकार का व्यक्तित्व प्रेममय सौन्दर्य की तरलता से युक्त है । कामायनी के वासना एवं अन्य सर्गों में उद्दाम , शृंगारिकता का चित्र प्रस्तुत किया है । जैसे–

घिर रहे थे घुँघराले बाल, अंस अवलंबित मुख के पास ।

नील घनशावक से सुकुमार सुधा भरने को बिधु के पास । –श्रद्धासर्ग

कवि ने अपने काव्य में चित्रात्मक भाषा का प्रयोग किया है जिसमें भावानुकूल एवं अनुभूति के अनुकूल शब्दों का उपयोग हुआ है । अनेक नवीन प्रतीक निर्मित किये हैं जो सूक्ष्म मनोभावों, चेष्टाओं, वस्तुओं व पदार्थों के बिम्ब प्रस्तुत करने में निष्णांत रूप से सूक्ष्म है । इनके काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि अलंकारों की सुन्दर छटा दर्शनीय है । इनके काव्य में दार्शनिकता के भी दर्शन होते हैं ।'कामायनी' में आत्मा, जीव, जगत्, प्रकृति, नियति, समरसता आनन्दवाद आदि दर्शन तत्त्वों का विशद् वर्णन किया गया है । जैसे–

चिति का स्वरूप यह नित्य जगत, वह सब बदलता शत शत,

कण विरह मिलनमय नृत्य निरत, उल्लासपूर्ण आनंद सतत ।। –दर्शन सर्ग

कवि के काव्य में रहस्यवाद की मुख्य विशेषताओं जिज्ञासा की भावना, सत्ताप्रदर्शन, मिलन का प्रयत्न, भौतिक विघ्न सत्ता-आभास, संसार-ज्ञान, समरसता आदि के दर्शन होते हैं । आज मानव किस प्रकार की विडम्बनाओं

एवं विषमताओं से पीड़ित है। त्रिलोक की प्रेरणा कवि को प्राचीन त्रिपुरदाह से मिली है। पहले किसी वस्तु का ज्ञान होता है फिर उसके संबंध में इच्छा की पूर्ति के लिये मानव कर्म करता है। इस प्रकार मानव की इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति एवं क्रिया शक्ति तीनों पृथक-पृथक दिशाओं में क्रियारत है। केवल इच्छा पंगु है। उससे कर्म का सहारा चाहिये, केवल कर्म अंधा है उसे ज्ञान का प्रकाश चाहिये। इन तीनों इच्छा, कर्म, ज्ञान के सुन्दर समन्वय से ही जीवन में समरसता आ सकती है। जैसे–

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की। –रहस्यसर्ग

इनके काव्य में भौतिकवाद के भी दर्शन होते हैं। आज के मानव के सिर पर इसका भूत सवार है और संसार में चारों ओर इनके पीछे व्यक्ति भाग रहा है। वस्तुतः वह सांसारिक सुख-सुविधाओं के पीछे मतवाला हो रहा है। जैसे–

कर्मचक्र सा घूम रहा है, यह गोलक, बन नियति-प्रेरणा,
सबके पीछे लगी हुई है, कोई व्याकुल नई एषणा।। –रहस्य सर्ग

प्रसाद जी की कविता का अभिव्यक्ति सौन्दर्य भी अत्यंत प्रभावोत्पादक है। भाषा परिमार्जित एवं प्रांजल है। इसमें अधिकतर तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनकी शैली भी रोचक, भावमय एवं श्लाघनीय है। इनके काव्य में छंदों एवं अलंकारों का सुन्दर प्रयोग अवलोकनीय है। अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक आदि अलंकारों की सुन्दर छटा द्रष्टव्य है। जैसे–

शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है,
जीवन वसुधा समतल है, समरस है जोकि जहाँ है। –आनन्द सर्ग

अतः हमें कहना ही पड़ेगा कि प्रसादकृत काव्य के अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष सशक्त एवं सुन्दर है। इसके संबंध में किसी आलोचक ने अपने मुखारविंद से मुखरित किया है–

अंधेरे में पड़े हुये कांच के टुकड़ों को जब शशि किरणें चुपचाप धरती पर आकर चुभती है तो वे हीरकनी की भाँति दिखाई देने लगते हैं। इस भाँति किसी कलाकार की बहुरंगीन कल्पना ऊर्जा काले अक्षरों को स्पर्श करती है तो

वे स्वर्णिम बनकर अमर हो जाते हैं जिन्हें देखने के लिये युग आँखें सदा तरसती हैं। यही बात प्रस्तुत काव्य के विषय में पूर्णतः चरितार्थ होती है क्योंकि आज भी प्रत्येक हिन्दी साहित्य प्रेमी की आँखें इस भव्य एवं सुन्दर काव्य का अनुशीलन करने के लिये लालायित है। अतः यह कहना सर्वथा समीचीन है कि कविता कामिनी के कमनीय नगर में प्रसादकाव्य एक ऐसे भव्यभवन के सदृश हैं जिसमें पद्य रूपी अनमोल रत्न जड़े हुये हैं। ऐसे रत्न जिनका मोल ताजमहल में लगे हुए रत्नों से भी कहीं अधिक है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी नाटक साहित्य के विकास में प्रसाद जी का जन्म एक नवयुग का उदय था। भारतेन्दु युग के नाटक प्रायः अनुदित थे। उनमें मौलिकता का अभाव था जो थोड़े बहुत बहुत मौलिक नाटक लिखे भी गये। उनमें प्रायः नाटकीय तत्त्वों की त्रुटियाँ थी। प्रस्तुत नाटककार की लेखनी ने नाटकीय विकास को चरमसीमा तक पहुँचा दिया। इसलिये प्रसाद युग को हिन्दी नाटक का स्वर्ण युग के नाम से अभिहित किया जाता है। इनके नाटक हिन्दी साहित्य की अक्षयनिधि है। प्रसाद जी के नाटकों की मुख्य विशेषताओं को अधोलिखित पंक्तियों में बांधा जाता है।

नाटकों की ऐतिहासिकता मानवीय संस्कृति का अमरकोष एवं सुरक्षित निकेतन है। इतिहास द्वारा ही मानव अपने अतीत की गौरवमय स्थिति से ज्ञान प्राप्त कर भविष्य के लिये प्रेरणा ग्रहण करता है। अतः प्रसाद जी ने सत्य ही लिखा है–

इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिये अत्यंत लाभदायक होता है।

नाटकों में उन्होंने महाभारत युद्ध के पश्चात् से लेकर हर्षवर्द्धन के राज्यकाल तक के भारतीय इतिहास को अपना लक्ष्य बनाया है। क्योंकि यही युग भारतीय संस्कृति की उन्नति एवं प्रसार का स्वर्णयुग माना जाता है। बीच में बौद्धकाल, मौर्यकाल और गुप्तकाल अधिक उत्कर्ष के काल माने जाते हैं। अतः इनका चित्रण प्रसाद के नाटकों में अधिक विस्तार से हुआ है। प्रसाद जी ने ऐतिहासिकता को अपनाते हुए भी अपने नाटकों को शुष्क इतिहास का रूप नहीं दिया है। अपितु उनके नाटकों में इतिहास एवं कल्पना का मधुर समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

नाटककार के नाटकों में प्राचीन भारतीय संस्कृति का सजीव चित्रण मिलता है। उनके नाटकों में विभिन्न युगों से संबंधित राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों को भी अति सुन्दर व्यंजना हुई है। उनकी ऐतिहासिकता का लोहा बड़े-बड़े इतिहासकार मानते थे। 'अजातशत्रु' में बौधधर्म की छाप सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः उनके नाटक भारत की विभिन्न संस्कृति के कोशग्रंथ है। अतः किसी आलोचक ने सत्य ही कहा है कि तुलसी के बाद भारतीय संस्कृति का स्पष्ट रूप यदि किसी कलाकार की वाणी में मुखरित हुआ है तो वे प्रसाद जी हैं।

विभिन्न पात्रों के हृदय में उन्होंने विभिन्न विरोधी वृत्तियों एवं प्रवृत्तियों का संघर्ष सूक्ष्मतापूर्वक प्रदर्शित किया है। उनके अनेक पात्र ऐसी गूढ प्रकृति के भी है जो बाहर से कुछ है और भीतर से कुछ। ऐसे पात्रों में मन, वचन और कर्म में द्वन्द्वात्मकता का आ जाना स्वाभाविक है। उनके पात्रों को समझना सरल नहीं है। उनके अंतः और बाह्य में पर्याप्त अंतर होता है। स्कंद गुप्त, देवसेना, चाणक्य, बिम्बसार, मल्लिका आदि पात्रों के चित्रण में नाटककार ने अंतर्द्वन्द्व का अधिक स्पष्ट चित्रण किया है। इस प्रकार चाणक्य से कात्यायन कहता है–

'तुम हँसो मत चाणक्य! तुम्हारा हँसना तुम्हारे क्रोध से भी भयानक है।'

प्रसाद जी के पात्रों के विषय में पं० जयनाथ प्रसाद जी लिखते हैं–

'ये हँसते हुये भी रोते रह सकते हैं और रोते हुए भी हँसते हैं।'

प्रसाद जी प्राचीन भारतीय आदर्श नारी के पुजारी हैं। इनके सम्यक् साहित्य में नारी पात्रों का स्थान अत्यंत महत्व है। उनके नाटकों में नारी के उज्ज्वल एवं कलंकित दोनों रूपों का विस्तारपूर्ण चित्रण हुआ है। इनके नाटकों में नारी देवियां भी हैं और दुष्टा भी। उनकी नारियां पुरुष के पीछे-पीछे चलने वाली निर्जीव कठपुतलियाँ नहीं हैं। उनका अपना व्यक्तित्व अपनी बुद्धि और अपना मस्तिष्क है। वे पुरुष की अनुचरी न होकर उसका पथप्रदर्शन करती हैं उनके अनेक नाटकों में शक्ति का मुख्य केन्द्र कोई न कोई नारी पात्र ही है। जैसे कि अजातशत्रु में मल्लिका या स्कंदगुप्त में देवसेना है। 'नारी! तुम केवल श्रद्धा हो!' की उक्ति 'कामायनी' की अपेक्षा प्रसाद के

नाटक साहित्य पर अधिक सफलता से चरितार्थ होती है ।

प्रसाद जी मूलतः कवि थे । अतः उनकी गद्य रचनाओं में भी काव्यत्व बलात् फूट पड़ता है । गीतों में ही नहीं उनके गद्यांशों में भी काव्योचित भावुकता का मिश्रण दृष्टिगोचर होता है ।

प्रायः नाटककार अपनी कृतियों में पात्रों के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता हैं शेक्सपीयर अपने नाटकों में एक ऐसे पात्र का निर्माण करते थे जो उनके विचारों की अभिव्यंजना कर सके । इस भांति प्रसाद जी ने विभिन्न पात्रों के संवादों द्वारा अपने जीवनदर्शन को भी नाटकों में स्पष्ट कर दिया है । वस्तुतः प्रेम, त्याग, वैराग्य अनेक कथन उनके नाटकों में उपलब्ध हैं । इनके समर्थन में अनेक दर्शन की करुणा एवं उसके दुःखवाद का प्रभाव भी उन पर परिलक्षित होता है । वे नियतिवाद के भी समर्थक थे । 'चन्द्रगुप्त' नाटक में इसके पक्ष में ही अनेक युक्तियाँ मिल जाती हैं । जैसे–

'नियति सम्राटों से भी प्रबल है ।'

प्रसाद के नाटकों का यह भी मुख्य गुण है कि उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यशिल्प का अपने नाटकों में सुष्टु समन्वय किया है । भारतीय विद्वानों की दृष्टि में रस नाटक की आत्मा है जबकि पाश्चात्य विद्वान् द्वन्द्व को ही नाटक के प्राण मानते हैं । प्रसाद जी ने इन दोनों तत्त्वों को अपने नाटकों में स्थान दिया है । उनके नाटकों में विविध रसों के समुचित दर्शन होते हैं । वहाँ द्वन्द्व के विविध रूपों का भी लेख मिलता है । यह द्वन्द्व कवि या नाटककार दोनों विरोधी पात्रों के मध्य एवं कभी एक ही पात्र, दो विरोधी कवियों के मध्य दिखाया गया है । वस्तुतः प्रसाद जी के नाटक न पूर्णतः भारतीय हैं न पाश्चात्य । इसके नाटक सुखद और दुःखांत न होकर प्रसादांत हैं ।

निष्कर्षतः इतना ही कहना काफी होगा कि प्रसाद जी की प्रतिभा साहित्य के अनेक क्षेत्रों में चमकी । जिस विषय में उन्होंने हाथ लगाया, उसे अलंकृत कर दिया । विशेषतः आधुनिक हिन्दी कवियों एवं नाटककारों में प्रसाद जी का सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ स्थान है । छायावाद के तो वे प्रवर्तक एवं सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं और उन्हें नाटक सम्राट् की सम्मानित उपाधि से विभूषित किया जाता है । सर्वतोमुखी प्रतिभा की दृष्टि से तुलसी व प्रसाद जी का जोड़ा अद्वितीय माना जाता है । अंततः हमें यह कहना पड़ेगा कि धन्य

धन्य थी वह माता जिसने ऐसे सुपुत्रों को जन्म दिया। सौभाग्य था हिन्दी वाटिका का जिसमें ऐसा सुमन खिला। दुर्भाग्य है हमारा जो इनके दर्शन से वंचित होना पड़ा। अतः किसी कवि के ये शब्द उन पर पूर्णतः चरितार्थ होते हैं–

सदियों तक साहित्य नहीं यह समझ सकेगा।
तुम मानव थे या मानवता के महाकाव्य थे।।

14. सुमित्रनन्द पंत

पंत जी एक युग चेतन कलाकार थे। उन्होंने अपने युग में प्रचलित प्रत्येक प्रवृत्ति का पूरी सफलता के साथ अंकन किया है। उनके काव्य का धरातल बड़ा व्यापक है। अतः उनकी देन आधुनिक युग के किसी भी कवि से कम नहीं। उनकी आरम्भिक भावुकता धीरे-धीरे चिन्तन की गम्भीरता में बदलती गई। पंत की विचारधारा से परिचित होने के लिए उनकी काव्य-कृतियां सीढ़ियों का काम करती हैं। जैसे एक-एक सीढ़ी एक निश्चित् ऊंचाई के निकट ले जाती हैं ठीक उसी प्रकार पन्त की रचनाएं प्रौढ़ता की ओर बढ़ती जाती हैं।

श्री सुमित्रनन्दन पंत का जन्म प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण जिला अल्मोड़ा के कौसानी नामक ग्राम में 20-5-1900 ई० को हुआ था। पंत जी जन्म के कुछ घंटों के पश्चात् ही अपनी माँ की स्नेह की छाया से वंचित हो गए थे। उन्होंने अपनी एक कविता में कहा भी है–

जन्म-मरण आये थे संग-संग बन हमजोली,
मृत्यु अंक में जीवन ने जब आँखें खोलीं।

इनके शैशव का नाम गुसाईं दत्त पन्त था। बाद में उन्होंने अपना नाम परिवर्तित कर सुमित्रानन्दन पंत रख लिया। शायद ऐसा उनके कोमल स्वभाव के कारण ही हुआ। स्वभाव की कोमलता और प्रकृति की सुकुमारता, इन दोनों ने मिलकर कवि को सुकुमार बना दिया। इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि कविता करने की प्रेरणा उन्हें प्रकृति से मिली। गांधी जी के आन्दोलनों से प्रभावित होकर पंत जी ने कॉलेज का अध्ययन छोड़ दिया। इन्होंने संस्कृत, हिन्दी, बंगला और अंग्रेज़ी का स्वतंत्र रूप से अध्ययन कर अपने को समर्थ

बनाया। 1970 ई० में भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से उनकी काव्यकृति चिदम्बरा पर 1,00,000/- रुपये का पुरस्कार दिया गया।

रचनाएं – पंत जी ने जब से साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किया तब से निरन्तर लिखते रहे हैं। उन्होंने युग के अनुसार अपनी रचनाएं प्रस्तुत कीं। प्रत्येक रचना अपने युग की प्रमुख काव्य-प्रवृत्ति की छाया प्रस्तुत करती है। पंत जी ने कविता के साथ-साथ गद्य के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। पन्त जी की रचनाएं इस प्रकार हैं–

काव्य – वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुंजन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायतन (महाकाव्य)।

नाटक – रजत, रश्मि, शिल्पी।

उपन्यास – हार।

कहानियाँ – पाँच कहानियाँ।

काव्यगत विशेषताएँ – पन्त जी का काव्य आधुनिक युग का दर्पण है।

1. छायावाद एवं रहस्यवाद – प्रकृति-प्रेम ने ही पन्त जी को कवि कर्म के लिए प्रेरित किया था। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा छायावाद को उत्कर्ष प्रदान किया। पन्त जी ने प्रकृति के विराट् रूप पर ही दृष्टिपात किया है। प्रकृति के माध्यम से सौन्दर्य और प्रेम के चित्रण के साथ-साथ कवि ने उसका मानवीय धरातल पर भी चित्रण किया है। कल्पना की सुन्दर तूलिका द्वारा पन्त ने प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया है–

न जाने नक्षत्रों से कोई, निमंत्रण देता मुझको कौन। –मौन निमंत्रण

रहस्यात्मक उक्तियों को व्यक्त करने के लिए भी कवि प्रकृति का आश्रय लेता है–

उठा कर लहरों से कर मौन

न जाने-मुझे बुलाता कौन?

प्रकृति के शान्त, सुन्दर, कोमल, कठोर आदि सभी रूपों का विशद् चित्रण है। छाया का मानवीकरण करते हुए पन्त जी कहते हैं–

कहो कौन हो दमयन्ती सी,

तुम तरु के नीचे सोई ?

हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या ?

अलि नल-सा निष्ठुर कोई ।

2. प्रगतिवाद और मानवतावाद – पन्त जी की युग-चेतना ने प्रगतिवाद-दर्शन को भी अपनाया है । मार्क्सवाद ने अपने पारस स्पर्श से पन्त जी को मुग्ध कर दिया । इनकी दृष्टि से समाज में फैली विषमता को देखा और उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई–

संग सौध में शृंगार भरण का शोभन ।

नग्न क्षुधातुर रहें जीवित जन ।

मानव ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ।

आत्मा का अपमान प्रेत औ छाया से रति । ।

पक्षियों, पुष्पों और इन्द्र धनुष के गीत गाने वाले कवि अन्ततः कह उठता है–

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर, मानव तुम सबसे सुन्दरतम ।

3. रस योजना – पन्त जी सुकुमार भावनाओं के कवि हैं इसलिए उनके काव्य में शृंगार रस के दोनों पक्षों – संयोग तथा वियोग का सुन्दर चित्रण मिलता है । शृंगार रस के साथ-साथ वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि रसों का भी चित्रण है । 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में पन्त ने प्रकृति के उग्र रूप का चित्रण किया है–

चतुर्दिक् घहर घहर आक्रान्ति, नष्ट करती सुख शान्ति ।

पन्त जी ने अपने काव्य में वेदनाभूति का भी मार्मिक चित्रण किया है । इसलिए पन्त जी के गीत जहाँ मधुर, सरस और संवेदनामय हैं वहाँ गीतिकाव्य की कलागत विशेषताओं से भी युक्त हैं ।

लोकायतन– पंत जी लोकायतन लोक-जीवन से संबंधित महाकाव्य है । इसमें पन्त जी की काव्य-बुद्धि अपने चरम पर उपलब्ध होती है । इसमें युगव्यापी समस्याओं का समर्थन रूप में चित्रण मिलता है ।

4. कला पक्ष – डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में –

पन्त जी प्रधान रूप से कलाकार हैं। इनके काव्य में सबसे प्रथम कला का, उसके उपरान्त विचारों और अन्त में भावों का स्थान है।'

पन्त जी ने अपने काव्य में संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली का प्रयोग किया है। भाषा परिमार्जित, कोमल, सस्वर, संगीतमय एवं प्रवाहपूर्ण हैं इसमें 'झरने' का सा कलनाद है। पन्त जी चित्र शैली में सिद्धहस्त हैं। भाषा में माधुर्य एवं प्रसाद गुण की ही प्रधानता है। सन्ध्या का एक चित्र दर्शनीय है–

बाँसों की झुरमुट
संध्या का झुटपुट
है चहक रहीं चिड़ियाँ
करतीं टीं-वीं-टीं-टूट-टूट।

अलंकार केवल प्राणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के लिए विशेष द्वार हैं। पंत जी ने अलंकारों का प्रयोग भावों के उत्कर्ष के लिये किया है। अनुप्रास की योजना में तो पन्त जी को विशेष सफलता मिली है। छन्द के क्षेत्र में भी पन्त जी ने नवीनता को ग्रहण किया है।

स्पष्ट हो जाता है कि पन्त जी आधुनिक काव्य के शृंगार हैं। काव्य जगत् में जैसे-जैसे कवि आगे बढ़ा है वैसे-वैसे उसका दृष्टिकोण परिपक्व और मानवतावादी बनता गया है। कवि पन्त उसी का प्रेमी बनना चाहता है जो महान् सुन्दर और शिव की भावना से युक्त है–

जग-जीवन जो चिर महान्,
सौन्दर्य-पूर्ण औ' सत्य प्राण,
मैं उनका प्रेमी बनूं नाथ।

15. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आधुनिक युग के समर्थ कलाकार माने जाते हैं। वे वज्र के समान कठोर और पुष्प के समान कोमल थे। उनका उपनाम निराला उनके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों का परिचायक है। निराला जी का जन्म सन् 1896 में महिषादल राज्य मेदनीपुर, बंगाल में हुआ था।

इनके पिता महिषादल राज्य में एक प्रतिष्ठत पद पर कार्य करते थे। अतः निराला का शैशव वहीं व्यतीत हुआ। उनकी आरम्भिक शिक्षा-दीक्षा भी बंगाल में ही सम्पन्न हुई। घर पर उन्होंने यथासम्भव संस्कृत का अध्ययन किया। ब्रज भाषा, खड़ी बोली की ओर भी निराला जी का आकर्षण था। निराला जी का सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय रहा। शैशव में मातृवियोग के कारण दुःख सहन करना पड़ा तो यौवन काल में पत्नी ने साथ छोड़ दिया। उन्हें अपने साहित्यिक जीवन में भी अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। उनके जीवन के प्याले में बार-बार कोई विष भर देता परन्तु वे उसे अमृत समझकर पी जाते। निराला जी का व्यक्तित्व अडिग था। वे टूट सकते थे पर झुक नहीं सकते थे। सन् 1961 में उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

निराला जी बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार थे। उन्होंने रहस्यवादी कविताएं रचीं, छायावादी काव्य को उत्कर्ष प्रदान किया, प्रगतिवादी का नारा लगाया, नारी-सौंदर्य का गुणगान किया, उपेक्षित मानव के लिए गीत लिखे। इतना ही नहीं उनका देश प्रेम भी अनूठा था। कहानी, उपन्यास, निबन्ध और संस्करण सबमें उनकी गति थी। निराला जी की उल्लेखनीय रचनाएं निम्नलिखित हैं–

काव्य – परिमल, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, अर्चना, आराधना, गीतागुंज।

उपन्यास – अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा।

कहानीसंग्रह – लिली, सखी, सुकुल की बीवी, चतुरी चमार।

आलोचना और निबन्ध – प्रबन्ध-पद्म, प्रबन्ध-प्रतिमा, प्रबन्ध-परिचय।

जीवनी-साहित्य – राणा प्रताप, प्रह्लाद, ध्रुव, शकुन्तला, भीष्म।

काव्यगत विशेषताएँ –रचनाओं का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि निराला जी साधारण प्रतिभा के कलाकार थे। उन्होंने संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हुए भी सरस्वती की आराधना नहीं छोड़ी। ऐसे ही कलाकार सच्चे अर्थों में सरस्वती के उपासक कहे जाते हैं। इनके काव्य की प्रमुख विशेषताओं का परिचय इस प्रकार है–

1. रहस्यवाद – 'निराला' जी का हृदय कवि है तो मस्तिष्क दार्शनिक है। निराला जी अद्वैतवादी थे। अतः वेदान्त निराला जी के रहस्यवाद का मूल

आधार है। आत्मा और परमात्मा के प्रणय सम्बन्ध को रहस्यवाद कहते हैं। निराला के रहस्यवाद में भावना और चिन्तन का सुन्दर समन्वय है। स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित होने के कारण निराला का रहस्यवाद व्यावहारिकता के धरातल पर उतरकर प्रकट हुआ है। शक्ति, करुणा और सेवा ही निराला के दर्शन का निष्कर्ष है। अद्वैतवाद के अनुसार आत्मा और परमात्मा अभिन्न है। इस अभिन्नता का बोध कराने वाली निराला जी की सर्वश्रेष्ठ कविता 'तुम और मैं' है। इसमें ब्रह्म और जीव की अभिन्नता का बड़ा सरस चित्रण हुआ है।

तुम तुंग हिमालय शृंग,
और मैं चंचल गति-सुर सरिता
तुम विमल हृदय -उच्छ्वास।
और मैं कान्त कामिनी कविता।

2. प्रकृति चित्रण – निराला जी छायावादी कवि हैं और छायावाद में प्रकृति का विविधरूपी चित्रण है। उन्होंने भावनाओं को उद्दीप्त करने वाले प्रकृति-रूप पर दृष्टि-पात किया है। यमुना की कल-कल ध्वनि करती हुई लहरों को देखकर कवि अतीतकालीन स्मृति में लीन हो जाता है–

यमुने! तेरी इन लहरों में,
किन आकुल अधरों की तान?
पथिक प्रिया सी जाग रही है,
किस अतीत के नीरव गान।

निराला जी ने प्रकृति के भयानक एवं कोमल दोनों रूपों का चित्रण किया है।

3. छायावादी –'निराला' जी छायावादी पुरुष के प्राण कहे जाते हैं। उनके काव्य में छायावाद के सभी तत्त्व उपलब्ध होते हैं। अतीत के प्रति मोह, सामाजिक चेतना, प्रकृति का मानवीकरण, प्रेमचित्रण आदि सभी विशेषताएं प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। 'संध्या सुन्दरी' शीर्षक कविता में प्रकृति का मानवीकरण दर्शनीय है–

दिवसावसान का समय

मेघमय आसमान से उतर रही है ।

वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी

धीरे-धीरे-धीरे ।

4. राष्ट्रीयता – निराला जी अपने युग के जागरूक कवि थे । इनकी रचनाओं एवं व्यक्तित्व दोनों में राष्ट्रीयता का समावेश रहा है । उन्होंने देश को आर्थिक विषमता का, नारी की महानता तथा तत्कालीन कुप्रथाओं का विश्वचित्रण कर मानव समाज को स्वस्थ बनाने की प्रेरणा दी । 'जागो फिर एक बार' शीर्षक कविता में निराला जी ने अतीतकालीन वीरता की उत्सर्ग-भावना का चित्र खींचा है–

समर में अमर कर प्राण,

गान गाए महासिंधु से

सिंधु-नव-तीर वासी ।

5. मानवतावादी दृष्टिकोण – निराला के हृदय में दीन-दुःखियों के लिए बड़ी सहानुभूति थी । बहुत से लोग ग़रीबों की ओर देखते तक नहीं । लोग यह नहीं समझते कि इस संसार में व्याप्त इस प्रकार की अव्यवस्था, सामाजिक और आर्थिक विषमता के लिए वे सब भी जिम्मेदार हैं । 'भिक्षुक' और 'वह तोड़ती पत्थर' नामक कविता निराला के मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय देती हैं । 'वह तोड़ती पत्थर' कविता की अधोलिखित पंक्तियाँ एक मजदूर स्त्री की दयनीय और विवश दशा का चित्रण करने में क्या पर्याप्त नहीं ?

वह तोड़ती पत्थर

देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर

वह तोड़ती पत्थर ।

6. दुःखानुभूति, करुणा एवं निराशा – निराला का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष में व्यतीत हुआ । अतः जीवन की दुःखद, करुण एवं निराशाजनक अनुभूतियों का चित्रण हो जाना स्वाभाविक था । 'करुण रस' की दृष्टि से 'सरोजस्मृति' उत्कृष्ट कविता है–

दुःख ही जीवन की कथा रही,

क्या कहूँ आज, जो नहीं कही ।

7. प्रगतिवाद – निराला जी ने अपने प्रगतिवादी दर्शन में एक ओर दीन-दुःखियों की दीन-हीन दशा का चित्रण किया है तो दूसरी ओर शोषकों के प्रति आक्रोश से भरी आवाज उठाई–

अबे, सुन बे गुलाब,
भूल गर मत पाई खुशबू रंगों आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट ।

8. कलापक्ष – निराला जी रूढ़ियों के विरोधी थे । कविता के क्षेत्र में उन्होंने स्वछन्दता से काम लेते हुए मुक्तक छन्द को ही अपनाया । उनकी कविता मुक्तक छन्द में होते हुए भी स्वर और लय से युक्त है । संगीतात्मकता निराला की कविता का विशेष गुण है । भाषा के प्रयोग में भी निराला ने स्वतंत्रता से काम लिया है । भाव के अनुरूप भाषा का रूप बदलता रहता है । ओज गुण सम्पन्न कविता की रचना में निराला जी को विशेष सफलता प्राप्त हुई है । निराला मुक्तक छन्द के प्रथम कवि होते हुए भी पूर्णरूपेण सफल रहे हैं । उनकी भाषा में कोमलता और पौरुष दोनों का सुन्दर संयोग है । एक तरफ समास-प्रधान भाषा का प्रयोग है तो दूसरी ओर सरल एवं व्यावहारिक भाषा है । कोमलकान्त पदावली के प्रयोग की दृष्टि से निराला की छायावादी कविताएं दर्शनीय हैं । अलंकार बड़े स्वाभाविक और भावानुकूल हैं । अतः स्पष्ट है कि निराला जी ने अपनी कृतियों के बल पर हिन्दी साहित्य में एक विशेष स्थान बना लिया है ।

16. रहस्यवाद

हरिक वर्ग शायद है अजमत का तेरी ।
हरिक गुल में तुझको खिला देखते हैं ।
चमकता सितारों में है नूर तेरा
महोखुर में तेरी जया देखते हैं ।

मानव ने आँखें खोलकर देखा तो अनन्त वैभवशाली प्रकृति का प्रसार । नीचे हरी-भरी धरती, ऊपर नीलाम्बर, मानव सिहर उठा । अनेक

प्रकार के पशु-पक्षी, सूर्य की ये आभामयी किरणें, चंद्र का शीतल प्रकाश, प्रात-सायं का मेघाम्बर, कहीं धूप-कहीं छाया और न जाने कितना कौतूहल। चारों ओर व्यवस्था नियम यह वैभव कहाँ से आया? किसने इतना प्रबंध यहाँ किया? परमात्मा, आत्मा व जगत् क्या है? यही से रहस्यवाद का उद्भव हुआ। वस्तुतः आत्मा एवं परमात्मा के बीच चलने वाले आध्यात्मिक प्रेम को रहस्यवाद के नाम से पुकारा जाता है। इसको स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न परिभाषाओं के प्रकाश में रंग बिरंगी किरणें विकीर्ण की है।

परिभाषाएँ–

चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।

–शुक्ल

किसी परम परोक्षसत्ता की अनुभूति एवं उससे मिलन की भावना रहस्यवाद है। –डा० नंद दुलारे वाजपेयी

अतः रहस्यवाद से तात्पर्य वह साधना चिंतन या भावना है जिसके द्वारा मानव उस रहस्यमय, अभाव, अव्यक्त, परमसत्ता का रहस्य जानना उसके साथ अनुराग स्थान प्राप्त करना, उसमें आत्मलीन होना चाहता है। इसका विषय आत्मा, परमात्मा और जगत् है।

रहस्यवाद का विकास एवं मुख्यकवि

1. कबीर – कबीर की वाणी रहस्यवाद से ओतप्रोत है। प्राचीन हिन्दी साहित्य में कबीर सर्वप्रथम रहस्यवादी कवि है। उन्हें इसका जन्मजात एवं आस्थामूलक कवि माना जाता है। वस्तुतः वे जन्मजात रहस्यसाधक थे। इस कारण उनकी साधना दूसरी अवस्था से होती है। कबीर का रहस्यवाद प्रेम और भक्तिपरक सच्चा रहस्यवाद है। विरह और मिलन अनुभूतियों का जैसा मार्मिक प्रकाशन कबीर की वाणी में मिलता है वह अन्यत्र नहीं दिखाई देता। शब्द की चोट लगते ही कवि की आत्मा तड़प उठती है। जैसे–

आँखड़ियाँ झाई पड़ी पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़या राम पुकारि पुकारि।।

जब कंत मिल गया तो मन-मयूर क्यों न नाच उठता । तब तो उनकी आत्मा परमसत्ता का साक्षात्कार करके नाच और झूम उठी । जैसे–

दुलहिन गांवहु मंगलाचार

हम घर आए हो राजा राम भरतार ।

इस प्रकार कबीर का रहस्यवाद विरह-मिलन की अनन्त अनुभूतियो से ओतप्रोत है ।

2. जायसी – जायसी के रहस्यवाद का आधार सूफी-साधना पद्धति है । उसका मूलतत्त्व प्रेम की पीर है, जायसी ने इश्क मजाजी (लौकिक प्रेम) को इश्क हक़ीक़ी (आध्यात्मिक प्रेम) का प्रथम सोपान माना है । यही कारण है कि उन्होंने अपने रहस्यवाद की अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिये रतनसेन और पद्मावती के कथानक को अपनाया है और इस प्रकार लौकिक प्रेमकथा के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की मनोरम व्यंजना की है ।

3. मीरा – मीरा के काव्य में रहस्यवाद की सभी मुख्य विशेषताओं के दर्शन होते हैं । इसमें रहस्यवाद के चार सोपान–आस्तिकता, जिज्ञासा, विरह, मिलन, आध्यात्मिकता, ब्रह्म, जगत् व जीव का सुन्दर समन्वय दाम्पत्य प्रेम गीतिकाव्य आदि है । वह प्रेमपरक रहस्यवाद की ही साधिका है । वह निर्मोही न तो आता है न कोई संदेश भेजता है । दोनों नयन झर रहे हैं । मीरा विवश है पांख नहीं है । अब मीरा को ज्ञान हो गया कि वह घट घटवासी है ।

जिनका पिया परदेस बसत है, लिख लिख भेजे पाती ।

मेरा पिया मेरे हीय बसत है, न कहूँ आती जाती । ।

4. जयशंकर प्रसाद – आधुनिक रहस्यवादी कवियों में प्रसाद जी का नाम सर्वप्रथम आता है । झरना, आँसू, लहर, कामायनी में प्रसाद के रहस्यवाद का उत्तरोत्तर विकास मिलता है । प्रथम रचनाओं में कवि लौकिक और अलौकिक प्रेम के बीज विचरण करता है । कामायनी में उस विराट् सत्ता के प्रति जिज्ञासा एवं आत्मा परमात्मा की एकता का रमणीय वर्णन है । प्रसाद की निम्नांकित पंक्तियों में उस अव्यक्त परमसत्ता के प्रति जिज्ञासाभाव देखा जा सकता है । जैसे–

सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ;

सदा मौन हो प्रवचन करते जिसका, वह अस्तित्व कहाँ ? —आशा सर्ग

आत्मा व परमात्मा की एकता के दर्शन भी प्रसादकृत कामायनी में होते हैं। जैसे—

हम अन्य न और कुटुम्बी हम केवल एक हमीं हैं।

तुम सब मेरे अवयव हो, जिसमें कुछ नहीं कमी है।।

प्रसाद के काव्य में आत्मा और परमात्मा की एकता पर आधारित रहस्यवाद कम है। लौकिक और अलौकिक प्रेम के मिश्रण की अस्पष्टता से उद्‌भूत रहस्यवाद अधिक है। —डॉ० गणपति चंद्र गुप्त

5. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – निराला जी की रचनाओं में रहस्यवाद की छटा यत्र तत्र दिखाई देती है। 'तुम और मैं' नामक कविता रहस्यवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें जीव एवं ब्रह्म की तात्त्विक एकता स्थापित की गई है। यथा—

तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल गति सुर सरिता।

तुम विमल हृदय उच्छवास और मैं कांत कामिनी कविता।।

निराला जी के रहस्यवाद पर रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद आदि के विभिन्न सिद्धान्तों एवं भाषणों का प्रभाव है क्योंकि निराला जी भारतीय संस्कृति के अटूट श्रद्धालु एवं अचल अनुयायी हुए हैं। उनके मस्तिष्क की दार्शनिकता हृदय की वेदना और जीवन की अस्त-व्यस्तता ने मिलकर निराला के रहस्यवादी स्वरों को और भी अधिक तीव्रता प्रदान कर दी। उनके स्वरों की शुष्कता, कठोरता एवं जटिलता के बीच स्पष्ट कोमल मधुरता का उन्मेष हो उठा। यथा—

हमें जाना जग के उस पार जहाँ नयनों से नयन मिले।

6. सुमित्रनन्दन पंत – प्रकृति के सुकुमार कवि पंत की रहस्य भावना उनके कोमल व्यक्तित्व की देन है। जन-सम्पर्क से दूर रहकर प्रकृति माँ की गोद में मुंह छिपाने वाली भोली बालिका का किसी काल्पनिक लोक की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था उसे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो अज्ञात लोक

में बैठा हुआ कोई अपरिचित उसे आमंत्रित कर रहा है । जैसे–

न जाने नक्षत्रों से कौन ?

निमांत्रण देता मुझको मौन ।

उनके रहस्यवादी जीवन की यही है छोटी सी गाथा जो पल्लव, वीणा और गुंजन में बिखरी पड़ी है । इनकी विचारधारा उत्तरोत्तर विकसित होती हुई अध्यात्मवाद की पावन भूमि में पहुँच कर विश्राम करती है । यहाँ कवि पर योगिराज अरविन्द का प्रभावपूर्ण रूप लज्जित होता है । इन्होंने अनुभव कर लिया कि केवल भौतिक उन्नति से ही मानव जीवन पूर्ण नहीं हो सकता । इसलिये उसमें आध्यात्मिक भावना अपनाना ही होगा । स्वर्णधूलि स्वर्णकिरण आदि कृतियो में हृदय से संदेह और भय को दूर करने और प्रेम से मानवता का प्रचार-प्रसार करने की प्रेरणा देता है । यथा–

सृजन करो नूतन मन खोल सके जो ग्रंथि हृदय की ।

7. महादेवी वर्मा – महादेवी के काव्य में रहस्यवाद को विभिन्न सोपानों आस्तिकता, जिज्ञासा, विरह मिलन के दर्शन होते हैं । यथा–

कौन तुम मेरे हृदय में ?

कौन मेरी कसक नित मधुरता भरता अलक्षित ?

मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ ।

बीन भी हूँ तुम्हारी रागिनी भी हूँ ।

इस प्रकार महादेवी के रहस्यवाद में साधक के साध्य तक पहुँचने के लगभग सभी सोपानों का चित्रण मिलता है । उनकी काव्यकृतियों में इसका सुस्पष्ट विकास दिखायी देता है । 'नीहार' में रहस्य भावना का अंकुर मात्र है, 'रश्मि' में उसे आकार मिला है । 'नीरजा' में उसे विरह का रूप दिया गया है । 'नीरजा' में वे अपने प्रिय का अंतर में बसा रूप देखती हैं । अतः आत्मसाक्षात्कार का जो आनन्द और परितोष साधक को मिलता है, वही नीरजा की कवयित्री को मिला है । 'सांध्यगीत' में यह अनुभूति और भी तीव्र हो जाती है । वेदना के प्रति एक रोगात्मक वृत्ति का प्रादुर्भाव होने से बड़ा सरसता और माधुर्य का संचार हो गया । दीपशिखा उनकी रहस्यभावना का

अंतिम सोपान है । उसमें मिलनाकांक्षा की तीव्रता के साथ आत्मा विश्वास का हठ भाव है, उत्साह का चरमोत्कर्ष है । यथा–

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेली ।

रहस्यवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ–

1. चार सोपान – रहस्यवादी साधना की प्रायः चार स्थितियाँ हैं– आस्तिकता, जिज्ञासा, विरह और मिलन । सर्वप्रथम भक्त या कवि के हृदय में उस परमसत्ता के जानने की आस्था उत्पन्न होती है । परन्तु कबीर की रहस्यभावना जन्मजात एवं आस्थामूलक है । अतः उन्हें रहस्य साधना की प्रथम सोपान से गुजरने की आवश्यकता नहीं पड़ी । जिज्ञासा में कवि उस असीम के प्रति जिज्ञासा प्रकट करता है । विरह में कवि की आत्मा परमात्मा के साक्षात्कार के लिये आकुल-व्याकुल होकर तड़पती है । मिलन में आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है । जब कंत मिल गया, तो मन-मयूर क्यों न नाच उठा ? तब तो सुख है अनन्त सुख जिसे कहा जाता है । कि कबीर ने इसी पंच भौतिक शरीर में ही पा लिया था ।

2. आध्यात्मिकता – इस में आध्यात्मिकता की प्रधानता है । आत्मा की नित्यता, आत्मा एवं परमात्मा की अभिन्नता, जगत् की असारता आदि का वर्णन रहस्यवादी कवियों ने किया है । अद्वैतवाद का प्रभाव रहस्यवादी कवियों पर सर्वाधिक है ।

3. प्रेम तत्त्व – इस काव्यधारा में प्रेम तत्त्व की व्यंजना प्रमुख रूप से मिलती है । इसके लिये दाम्पत्य-प्रेम पद्धति को भी मुख्य रूप से अपनाया गया । हिन्दी में कबीर से लेकर महादेवी तक प्रायः सभी ने अलौकिक प्रभु के प्रति रूप में स्वीकार करते हुए अपनी आत्मा को पत्नी के रूप में प्रस्तुत किया हैं परन्तु केवल जायसी ने परमात्मा और आत्मा को पति माना ।

4. आत्मसमर्पण की भावना – इस धारा के कवियों में आत्मसमर्पण की भावना के दर्शन होते हैं । कबीर जैसे कठोर व अखण्ड साधक में भी दैन्य भाव है । जैसे–

कबीर कुत्तिया राम की, मुतियाँ मेरा नाऊँ ।
गलै राम की जेबड़ी जित खेंचे तित जाऊँ । ।

5. प्रतीकात्मक शैली – रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए इन कवियों ने प्रतीकात्मक शैली को अपनाया। पुराने रहस्यवादी, कवियों में लोक-व्यवहार के प्रतीकों को चुनकर रहस्यवादी भावनाएं प्रकट की गई यथा–

माली आवत देख कै कलियाँ करी पुकार।
फुले-फुले चुनि लई काल्हि हमारी बार।।

6. गीतिकाव्य – अधिकतर रहस्यवादी कवियों ने कबीर, पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी आदि ने अपनी रचनाएँ गीतिकाव्य में की। यथा–

तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल गति सुर सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छवास और मैं कांत कामिनी कविता।

–निराला (तुम और मैं)

7. कलापक्ष – कबीर के रहस्यवाद काव्य की भाषा साधुकड़ी है और आधुनिक कालीन कवियों पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा की भाषा खड़ी बोली है। शैली रोचक और प्रभावोत्पादक है। उपमा, रूपक, यमक आदि अलंकार अवलोकनीय हैं। दोहा, सोरठा, मुक्तक छंद का सुन्दर व्यवहार हुआ है।

स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी में रहस्यवाद की व्यंजना अत्यंत व्यापक रूप में हुई है। यद्यपि कवियों को अनुभूति के अभाव में कबीर की सी सफलता नहीं मिली फिर भी प्रेम के स्वछंद एवं पवित्र रूप में चित्रण की दृष्टि से वे बधाई के पात्र हैं। आज भले ही इसकी धारा मंद हो गई है। किन्तु विश्वात्मा की सत्ता का विश्वास साहित्यकार में बना रहा तो अवश्य ही उसे रहस्यलोक की शांति प्रदायिनी छाया में विधान के कुछ क्षण ढूंढने होंगे।

17. छायावाद

निर्झर में हमें संगीत सुनाई देता है। कमल के पुष्प में स्वास्थ्य और सौन्दर्य की द्योतक किसी रमणी के मुखश्री की आरकत आभा दिखाई देती है। संध्या सुन्दरी अप्सरा की भाँति आकाश से चुपचाप उतरती दिखलाई देती है। प्राची की स्वर्ण आभा का संदेश लाती है। कलियाँ खिलकर प्रकृति के हृदयोल्लास का परिचय देती है। हिमकण हमारे साथ हँसते हुए दिखाई पड़ते

हैं। यमुना की लहरों में भावक हृदय को अतीत की आकुल तान सुनाई पड़ती हैं। इसी प्रकार कवि हृदय प्रकृति के सुरम्यराग से स्पंदित हो उठा। इसी प्रकार की काव्यधारा को छायावाद के नाम से पुकारा जाता है। वस्तुतः छायावाद काल खड़ी बोली हिन्दी कविता का स्वर्णयुग है जैसे कि भक्तिकाल, ब्रजभाषा का स्वर्णयुग है।

आधुनिक युग वादों का युग है। राजनीति, धर्म, समाज, साहित्य जहाँ भी देखों वहीं वादों का झंझट खड़ा रहता है। विशेषतः साहित्य में तो वादों की विशेष चर्चा है। जैसे – रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, हालावाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद, आतंकवाद आदि। इसी प्रकार ठनठनाता हुआ आ गया छायावाद। इस काव्यधारा का काल हिन्दी साहित्य में 1916-1936 ई० तक माना जाता है। इस काव्य धारा के प्रवर्तक जयशंकार प्रसाद माने जाते हैं।

परिभाषा – छायावाद को परिभाषित करने के लिये विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न परिभाषाओं के आलोक में रंग-बिरंगी किरणें विकीर्ण की हैं यथा–

छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। –डा० नगेन्द्र

प्रकृति में मानवीय भावनाओं का आरोप ही छायावाद है।

–डा० विश्वर मानव

उपरलिखित परिभाषाओं की इस भीड़ से भी छायावाद के स्वरूप का स्पष्टीकरण नहीं हो सका। इन परिभाषाओं को पढ़कर चाहे छायावाद समझ में आवे या न आवे परन्तु पाठक के मस्तिष्क पर अवश्य छायावाद छा जाता है। हमारे विचार में यह एक विशेष प्रकार की मानसिक चेतना है जिसमें व्यक्ति अंतर्मुखी होकर बाह्य जगत् की अपेक्षा अंतर्जगत् को, बौद्धिकता की अपेक्षा भावात्मकता को, यथार्थ की अपेक्षा कल्पना को, सत्य की अपेक्षा सौन्दर्य को, परम्परा की अपेक्षा नूतनता को एवं संघर्ष की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्व देने लगता है। जिस काव्यधारा में इस प्रकार की अंतर्मुखी चेतना की अभिव्यक्ति होती है उसे सामान्यतः छायावाद के नाम से पुकारा जाता है।

2. मुख्य कवि –

1. जयशंकर प्रसाद – जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य में छायावाद के प्रवर्तक कवि माने जाते हैं । कामायनी, आँसू, लहर, झरना इनकी मुख्य काव्य कृतियाँ हैं । वस्तुतः कामायनी आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृति है । इसमें सृष्टि-विकास की गाथा मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत की गई है । इसको छायावाद का सर्वप्रथम सोपान के नाम से पुकारा जाता है । इसका मुख्योद्देश्य है कि केवल इच्छा पंगु है उसे कर्म का सहारा चाहिये । केवल कर्म अंधा है उसे ज्ञान का प्रकाश चाहिये । यथा–

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की । –रहस्य सर्ग

अतः कवित कामिनी के कमनीय नगर में प्रसाद जी की कामायनी एक ऐसे भव्य भवन के सदृश है जिसमें पद्य रूपी अनमोल रत्न जड़े हुए हैं । ऐसे रत्न जिनका मोल ताजमहल में लगे हुए रत्नों से भी कहीं अधिक है ।

आँसू – आँसू इनका एक स्मृति काव्य है । कवि ने अतीत जीवन की अनुभूतियों को स्मृति के माध्यम से दर्द-भरी अभिव्यक्ति की है । नारी सौंदर्य का मनमोहक चित्र आँसू की पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

शशि मुख पर घूँघट डाले अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये ।
मेरे जीवन की उलझन बिखरी थीं उनकी अलकें
पी ली मधु मदिरा किसने थीं बंद हमारी पलकें ?

इस प्रकार प्रस्तुत कृति में प्रसाद जी की अनुभूति व्यक्तिगत निराशा के गर्त से निकालकर विश्ववेदना के साथ तादात्म्य स्थापित करती हुई मानव जीवन को सुखी बनाने के लिये आकुल हो उठी ।

लहर – इसमें प्रसाद की गीतकला का उत्कृष्ट रूप दिखाई देता है । इसमें प्रेम, प्रकृति, रहस्यवाद आदि विषयों का निरुपण हुआ है । यथा–

धीरे से वह उठता पुकार, मुझको न मिला रेशमी प्यार ।

2. सुमित्रनन्दपंत – वीणा, पल्लव, ग्रंथि, गूंजन आदि कवि के मुख्य

काव्य संग्रह हैं । वीणा का कवि प्रकृति पर मुग्ध होकर कलाओं के सौन्दर्य की अवज्ञा कर बैठता है । वहाँ गुंजन में स्थिति इसके विपरीत है । यथा–

तोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी पाया ।

बाले ! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन । ।

वही कवि गूंजन में आकर देखता है कि नारी सौन्दर्य प्रकृति सौंदर्य से बढ़कर है इसलिये प्रकृति ईर्ष्या के कारण लाल हो उठती है । जैसे–

तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार लग गई मधु के वन में ज्वाल ।

खड़े किशुक अनार कचनार लालसा की लौ से उठ लाल । ।

वस्तुतः कवि पंत कभी वादी नहीं रहे वे निरंतर गतिशील एवं भ्रमणशील रहे ।

3. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' – परिमल, गीतिका, अनामिका, तुलसीदास कवि के मुख्य छायावादी काव्य संग्रह हैं । गायक की वाणी, कलाकार का हृदय, चित्रकार के हाथ, पहलवान का शरीर, दार्शनिक का मस्तिष्क रखने वाले सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जी को कौन हिन्दी प्रेमी नहीं जानता? वे साहित्य में भी निरालेपन के साथ छंदों के बंधन को तोड़ते हुए रहस्यवाद में पौरुष भरते हुए, कविताकामिनी के सुकुमार तन से अलंकार उतारते हुए उनके काव्य में छायावाद की मुख्य विशेषताओं व्यक्तित्व की प्रधानता, प्रणयचित्रण, प्रकृति का मानवीकरण, नारीचित्रण, रहस्यमय अनुभूति, लाक्षणिकता शब्दावली, गीतिकाव्य, दुःख व वेदना आदि के दर्शन होते हैं । गीतों में कवि के जीवन की घोर निराशा साकार हो उठी । यथा–

स्नेह निर्झर बह गया है । रेत ज्यों तन रह गया है ।

मैं अकेला

देखता हूँ आ रही

मेरे जीवन की सांध्य वेला ।

उनके काव्य में प्रकृति के मानवीकरण के दर्शन भी होते हैं–

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह संध्या सुन्दरी परी-सी

धीरे-धीरे-धीरे

राम की शक्ति पूजा, जुही की कलि छायावादी काव्य की एक उत्कृष्ट उपलब्धि है । राम की शक्ति पूजा में कवि ने धर्म एवं अधर्म के शाश्वत संघर्ष का चित्रण किया है । राम धर्म है और रावण अधर्म ।

4. महादेवी वर्मा – नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, सप्तपर्णी आदि कवयित्री के मुख्य काव्य संग्रह है । नीहार से लेकर दीपशिखा तक के संग्रहों में इनके लगभग 225 मौलिक गीत संकलित है जबकि सप्तपूर्णा में वैदिक संस्कृत के काव्यात्मक अंशों के भावात्मक अनुवाद प्रस्तुत हुए हैं । उनके विधि गीतों में व्यथा, पीड़ा, आशा, अज्ञातप्रिय के प्रति प्रणय निवेदन एवं साधना की विविध अनुभूतियों के स्वर मुखरित हुए हैं । महादेवी ने भी अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रणय निवेदन किया है किन्तु उनका प्रणय दुःख प्रधान है । वे प्रिया से मिलन की कामना नहीं करती क्योंकि मिलन में तो व्यक्तित्व का ही नाश हो जाता है । यथा–

मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ ।

इसके अतिरिक्त दुःख, पीड़ा, आंसू, वेदना की काली घटाएं सदैव देवी जी की कविताओं पर छाई रही हैं । उन्हें आंसू प्रकाश प्रदान करता है जैसे–

मैं दुःख का श्रृंगार करूँगी ।

इस प्रकार महादेवी जी के काव्य में छायावाद के सभी गुणों के दर्शन होते हैं । इसलिये पं० विनय मोहन शर्मा ने उचित ही मुखरित किया है–

छायावाद ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन ।

मुख्य त्रुटियाँ –

छायावाद में वास्तविक जीवन से हटकर कल्पना की प्रधानता एवं पलायनवाद के दर्शन होते हैं । डा० देवराज ने छायावाद के प्रसंग में अनामिका की कलिष्टता प्रकट की । इसी प्रकार पंतकृत स्याही की बूंद कविता भी इसकी कलिष्टता का उत्कृष्ट उदाहरण है । इस प्रकार यह काव्य न रहकर अलंकृत संगीत बन गया है । इसके कारण इसमें बौद्ध काल की प्रधानता है ।

मुख्य विशेषताएं–

1. व्यक्तिवाद की प्रधानता – छायावादी काव्य में स्व की अभिव्यक्ति अन्य कवियों से अधिक है । विषयवस्तु की खोज में कवि बाहर नहीं अपने

मन के भीतर ही झांकता है। प्रसाद कृत 'आँसू' काव्य तो मानो अश्रु की ही काव्यनिर्झरिणी है उसमें प्रियतम का जो एक बार वियोग हुआ तो कवि को जीवनभर रोना पड़ा। यथा–

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति-सी छाई।

दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई।।

2. प्रकृतिचित्रण –छायावादी कवि प्रकृति के चतुर चितेरे हैं। उन्होंने प्रकृति के कोमल व कठोर आलम्बन उद्दीपन आदि विभिन्न रूपों का चित्रण सफलतापूर्वक किया। निराला की 'संध्या-सुन्दरी' और पंत की 'परिवर्तन' नामक कविताओं में प्रकृति के कोमल व कठोर रूपों के दर्शन होते हैं। छायावाद की सौन्दर्यानुभूति इस विराट् प्रकृति के अणु-परमाणु में विकसित पल्लवित एवं पुष्पित होती है। उन्होंने विश्व के कोलाहल से दूर प्रकृति की रंगशाला में प्रवेश करके शतशः हृदयस्पर्शी सौन्दर्य चित्र अंकित किये हैं। उनकी प्रायः प्रत्येक कृति प्रकृति की सौन्दर्य सुषमा से सुसज्जित है। उनका मन प्रकृति चित्रण में खूब रमा है। इसलिये प्रकृति में मानवीकरण के दर्शन होते हैं। यथा–

छोड़ द्रुमों की मृदुछाया तोड़ प्रकृति से भी माया।

बाले! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।।

2. नारीचित्रण – नारी के प्रति छायावाद ने सर्वथा एक नवीन दृष्टिकोण अपनाया है। यहाँ नारी वासना की पूर्ति का साधन नहीं है। यहाँ तो वह प्रेयसी जीवन सहचरी, माँ आदि विविध रूपों में उतरी है। प्रसाद द्वारा चित्रित इस भावमयी एवं दयामयी नारी का यह सुकुमार एवं कोमल रूप अत्यंत रमणीय है। यथा–

नारी माया ममता का बल, वह शक्तिमयी छायाशीतल –कामायनी

5. शृंगारिकता – इसमें शृंगार की प्रचूरता है परन्तु यह शृंगार स्थूल न होकर सूक्ष्म है। यह भोग की वस्तु नहीं अपितु कौतूहल एवं विस्मय का विषय है। जैसे–

श्रद्धे क्या थी मानो कुसम वैभव में लता समान

जैसे चंद्रका से लिपटा हो घनश्याम। –प्रसाद

6. रहस्यवाद – छायावादी कवि जीवन व जगत् को रहस्यमयी दृष्टि से देखता है। शुक्ल व डा० वर्मा जी तो छायावाद व रहस्यवाद में कोई विशेष अंतर नहीं मानते परन्तु दोनों में अंतर अवश्य है। दोनों में रहस्यानुभूति के दर्शन होते हैं। प्रसाद ने परमसत्ता को खोजकर निराला के तत्त्वज्ञान से पंत ने प्राकृतिक सौंदर्य से और महादेवी ने प्रेम व वेदना से अपने रहस्यामुखी होने का परिचय दिया है। यथा–

तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचलगति सुरसरिता।

तुम विमल हृदय उच्छवास और मैं कांतकामिनी कविता। –निराला

7. मानवतावाद – इस काव्य में राम कृष्ण परम हंस स्वामी विवेकानंद, टैगोर, गांधी आदि के दर्शन का पर्याप्त प्रभाव है। छायावादी कवि समूचे संसार से प्रेम करता है। उसके लिये भारतीय एवं अभारतीय में कोई अंतर नहीं। छायावादी कवि ने युग युग से उपेक्षित नारी को सदियों की कारा से मुक्त करने का स्तर अलापा। रीतिकालीन कवि के समान उसकी दृष्टि केवल नारी के कूच व कटाक्ष तक ही सीमित न थी। यथा–

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो। –प्रसाद

इसी प्रकार व्यापक मानवतावाद का एक और पद्यांश द्रष्टव्य है–

औरों को हँसते देखे मनु, हँसो और सुख पाओ।

अपने सुख से विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।।

8. वेदना व निराशा – इस काव्य में वेदना व निराशा का प्राधान्य है। हर्ष-शोक, हास्य-रुदन, जन्म-मरण, विरह-मिलन आदि से उत्पन्न विषमताओं एवं विभीषिकाओं से घिरे हुए मानव-जीवन को देखकर कवि हृदय में वेदना व करुणा उमड़ पड़ती है। पंत तो काव्य की उत्पत्ति ही वेदना से मानते हैं। जैसे–

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।

उमड़कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।।

10. अभिव्यक्ति पक्ष – छायावादी कवियों ने अपने काव्य में खड़ी बोली का प्रयोग किया। इस काव्य की भाषा प्रौढ एवं परिमार्जित है। खड़ी बोली

को संवारने में छायावादियों ने बहुत बड़ा कार्य किया है। पंत तो शिल्पी ही हैं। उन्होंने जाने कितने नूतन शब्दों की उद्‌भावना करके भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता को बढ़ाया है। इसमें मुक्तक गीति शैली, प्रतीकात्मकता, प्राचीन व नवीन अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग, कोमल कांत पदावली का प्रयोग आदि हुआ है। जैसे–

बिखरी अलके ज्यों तर्कजाल
कीर्ति किरण सी नाच रही है
मृदु मंद मंद मंथर मंथर –कोमलकांत पदावली

इसमें विविध छंदों का प्रयोग हुआ है। ये कवि छंदयोजना में अंतर्निहित लयात्मकता की शक्ति को पूर्णतः पहचानते थे। निराला ने तो मुक्तक छंद का आविष्कार कर दिया। अलंकारों में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा तथा अनुप्रास इन्हें विशेष रूप से प्रिय रहे। यथा–

शशि मुख पर घूंघट डाले अंतर में दीप छिपाए।
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आए।। –प्रसाद

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि इस काल की रचनाओं में गीत से लेकर महाकाव्य तक की सभी विधाओं का प्रयोग हुआ है। सभी प्रकार के छंदों एवं अलंकारों से ये रचनाएं समृद्ध हुई हैं। कलापक्ष का जितना उन्नयन इस काल में हुआ वह अद्वितीय है। इस विषय में डा० इन्द्रनाथ मदान का यह कथन सत्य ही है–

छायावाद काव्य में प्रसाद ने यदि प्रकृति तत्त्व को मिलाया, निराला ने मुक्तक छंद दिया तो पंत ने शब्दों को खराद पर चढ़ाकर सुडौल और सरल बनाया और महादेवी जी ने उसमें प्राण डाले।

अब छायावाद का पतन हो गया है। बड़े-बड़े आलोचकों को इसकी घोषणा गंभीर पुस्तकें लिखकर कर दी। प्रसाद की मृत्यु के पश्चात् ऐसा कोई भी व्यक्ति छायावाद के पास नहीं था जो इसके नेतृत्व को संभाल सके। भले ही छायावाद इस धरती पर न रहे किन्तु व्यापक आदर्शों एवं सूक्ष्म सौंदर्य को लेकर चलने वाला छायावाद अब भी अजर है, अमर है। इस कविता का गौरव अक्षय है। इसकी समृद्धि की समता केवल भक्ति काव्य ही कर सकता है।

18. प्रगतिवाद

प्रकृति का यह एक शाश्वत नियम है कि एक की प्रतिक्रिया में दूसरे का उद्‌भव होता है । अंधकार की प्रतिक्रिया में प्रकाश का, जन्म की प्रतिक्रिया में मृत्यु का, आशा की प्रतिक्रिया में निराशा का जन्म होता है । प्रकृति पल-पल मानव जीवन क्षण-क्षण आगे बढ़ता है । इस भाँति यह सृष्टि प्रगतिशील है । यह सदैव आगे ही आगे बढ़ती है । सृष्टि की नित नूतनता उसके सतत् एवं क्रमिक विकास में निहित है । यदि इस गति में क्षणिक व्यतिक्रम हो जाए तो सब कुछ उलट-पलट हो जाएगा । वस्तुतः गति ही जीवन है और अगति मृत्यु । अतीत से प्रेरणा, वर्तमान से विद्रोह और भविष्य के प्रति लगाव की प्रवृति ही मानव को प्रगति पथ पर अग्रसर होने को प्रेरित कर रही है । काव्य का क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है । किन्तु आधुनिक युग से प्रगतिवाद के नाम से एक विशिष्ट काव्यधारा प्रचलित हुई जिसकी पृष्ठभूमि आर्थिक समानता पर निर्धारित है । इस काव्यधारा का काल हिन्दी साहित्य में 1936 से 1943 ई० माना जाता है । 1936 ई० में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की गई । इस संघ के सभापति मुंशी प्रेम चन्द थे ।

परिभाषाएं – वस्तुतः छायावादी काव्य की प्रतिक्रिया में प्रगतिवाद का उदय हुआ है यदि ऐसा कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं । प्रगतिवाद का स्वरूप परिभाषित करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने विविध विचार प्रस्तुत किये हैं । यथा–

प्रगतिवाद उपयोगितावाद का दूसरा नाम है । –पंत

प्रगतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण है ।

अतः जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र, साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद के नाम से पुकारा जाता है । दूसरे शब्दों में साम्यवादी दृष्टिकोण के अनुसार निर्मित काव्यधारा प्रगतिवाद है ।

मुख्यकवि –

1. सुमित्रानन्दनपंत – सुमित्रानन्दनपंत ने युगांत, युगवाणी, ग्राम्य आदि प्रगतिवाद काव्यसंग्रह लिखे । वस्तुतः हिन्दी साहित्य में पंत जी प्रगतिवााद के

प्रवर्त्तक माने जाते हैं । वे छायावादी सौंदर्य के रिम-झिम, झिल-मिल आवरण से हटकर यथार्थ की ओर झुके । उनके काव्य में प्रगतिवाद की मुख्य विशेषताओं – सामाजिक एवं आर्थिक क्रांति, साम्राज्यवाद का विरोध, वर्ग-संघर्ष का चित्रण, धर्म एवं ईश्वर में अविश्वास आदि के दर्शन होते हैं । इनकी गाकोकिल कविता इस प्रकार की है । यथा–

गा कोकिल बरसा पावक कण । नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन ।

2. नागार्जुन – नागार्जुन भी एक प्रगतिवादी कवि है । इनकी मुख्य कृतियाँ हैं । युगधारा, सतरंगें पंखों वाली, प्यासी पथराई आँखें, तालाब की मछलियां, तुमने कहा था, खिचड़ी विप्लव देखा हमने 7 हज़ार-हज़ार बाहों वाली आदि ।

इस प्रकार इन्होंने जीवन के संघर्ष, कष्ट आदि की अनुभूतियों से लेकर, प्रकृति, प्रणय, समाज, राष्ट्र, जन-जीवन आदि तक की विभिन्न परिस्थितियों का अंकन प्रभावोत्पादक शैली में किया है । यथा–

मेरा क्षुद्र व्यक्तित्व रुद्ध है, सीमित हैं
आटा, दाल नमक लकड़ी के जुगाड में । ।

3. शिवमंगलसिंह सुमन – इनकी मुख्य काव्य कृतियाँ हैं–हिल्लोल, जीवन का गान, प्रलय-सृजन, पर आँखें नहीं भरी, विन्ध्यहिमालय, मिट्टी की बलात् । इनमें रोमांस विलास, करुणा, सहानुभूति, राष्ट्रप्रेम, क्रांति आदि विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति प्रभावोत्पादक शैली में हुई है । यथा–

हाय ! यहाँ मानव मानव में समता का व्यवहार नहीं है ।
हाहाकारों की दुनियाँ में सपनों का संसार नहीं है । ।

4. रामधारीसिंह दिनकर – हुंकार, रेणुका, इतिहास के आँसू, धूप, और धुआं आदि आप के मुख्य प्रगतिवादी काव्यसंग्रह हैं । अतः विषमता का चित्रण करते हुए दिनकर ने सशक्त भाषा में लिखा है–

श्वानों को मिलता वस्त्र दूध भूखे बालक अकुलाते हैं ।
मां की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं । ।

इसके अतिरिक्त बच्चन, नवीन, अश्क, त्रिलोचन शास्त्री, डा० राम विलास शर्मा आदि ने भी प्रगतिवाद के विकास में श्लाघनीय सहयोग प्रदान किया है ।

मुख्य विशेषताएं–

1. रुढ़िवादी विरोध– प्रगतिवादी साहित्यकार की दृष्टि में मानव की महत्ता सर्वोपरि है । उसके लिये धर्म एक अफीम का नशा है और प्रारब्ध एक सुन्दर प्रवंचना । जैसे–

जगपति कहाँ अरे वह तो हुआ सदियों से राख की ढेरी ।

नहीं तो समता संस्थापन में लगती इतनी देरी । ।

2. शोषितों के प्रति सहानुभूति – शोषण मानव जाति के लिये एक घोर अभिशाप है और इसका निवारण साम्यवादी व्यवस्था का लक्ष्य है क्योंकि भूखे के लिये उषा स्वर्ण सुहाग एवं हीरक कणों के आयुक्त वेणी वाले रजनी कोई महत्व नहीं रखती । आज के निर्मम युग में शोषण की चक्की के पाटों में पिसने वाले शोषित वर्ग मजदूर किसानों एवं पीड़ितों की दशा का प्रगतिवादी कलाकार ने सहानुभूतिपूर्ण व कारुणिक चित्रण किया है । प्रायः समूचे काव्य में यही करुणा कहानी है । यथा–

आज अमीरो की हवेली किसानों की होगी पाठशाला । –निराला

वह नस्ल जिसे कहते मानव, कीड़ी से आज गई बीता । –अंचल

3. शोषितों के प्रति घृणा – इसमें पूंजीपति को घोर अत्याचारी के रूप में दर्शाया गया है । क्योंकि शोषक वर्ग व्यापारी, उद्योगपति, जिमींदारी आदि उचित अनुचित ढंग से पूंजीवादी व्यवस्था को बनाये रखना चाहता है ।

4. क्रान्ति की भावना – प्रस्तुत काव्य क्रान्ति व विरोध की भावना से ओतप्रोत है । प्रगतिवाद कलाकार का एक मात्र साधन है क्रांति । यथा–

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए ।

–बाल कृष्ण शर्मा नवीन

5. मार्क्सवाद में आस्था – प्रगतिवादी साहित्यकार साम्यवाद के प्रवर्त्तक कार्लमार्क्स व रूस का गुनगान करता है । जैसे–

साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग, करता मधुर पदार्पण । –पंत

6. धर्म व ईश्वर का विरोध – शोषक वर्ग धर्म व ईश्वर के नाम पर शोषित वर्ग पर अत्याचार करता है । इसलिए प्रगतिवादी कलाकार की इसमें

आस्था नहीं है । क्योंकि ईश्वर बूढ़ा और बेकार हो गया है । परन्तु यह सत्य नहीं क्योंकि परमात्मा का पर्यायवाची शब्द आनन्द है और इस संसार का प्रत्येक व्यक्ति आनन्द ही चाहता है । अतः वह परमात्मा को मानता है ।

7. नारीचित्रण – इन कवियों ने नारी को भी मजदूर व किसान की भाँति शोषित माना है । पुरुष शताब्दियों से इस पर अत्याचार करता आ रहा है । जैसे–

मुक्त करो नारी को मानव चिर वंदिनी नारी को ।

युग युग की बर्बर कारा से, जननि सखि प्यारी को ।। –पंत

इसमें नारी को पुरुष की भाँति स्थूल सृष्टि का अंग घोषित किया है । रीतिकालीन कवियों की भोग्या और छायावादी कवियों की काल्पनिक अप्सरा इस साहित्य के पुरुष की जीवन सहचरी बन गई जैसे–

योनि नहीं रे ! नाहीं वह भी मानवी प्रतिष्ठित ।

उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित ।। –पंत

8. वर्गहीन समाज – प्रगतिवादी कवि वर्गहीन समाज का समर्थक है क्योंकि उसका विश्वास है कि समाज के सब दुःखों का कारण आर्थिक विषमता है ।

9. यथार्थ जीवन चित्र – इसमें कवि समाज के यथार्थ चित्रण अंकित करने में विश्वास रखता है । उसकी धारणा है कि साहित्य वही श्रेष्ठ है जिसमें तत्कालीन मानस समाज की भाँति कल्पना के पंखों पर बैठकर इस धरातल से दूर नई सृष्टि में नहीं जाना चाहता यथा–

हाय मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिक पूजन –पंत

10. मानवतावादी – प्रगतिवादी कवि को संसार के सब दलित लोगों से प्यार एवं सहानुभूति है । उसे संसार के किसी भी कोने में किये गये अत्याचार से रोष एवं तोष है । देखिए–

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर, मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम ।

11. वर्तमान समस्याओं का चित्रण – जनसंख्या समस्या, महंगाई समस्या, प्रदूषण समस्या, काश्मीर समस्या आदि का दिग्दर्शन भी इस साहित्य

में परिलक्षित होता है । गांधी के निधन पर उनकी आत्मा फूट पड़ी–

बापू मेरे–

अनाथ हो गई भारत माता

अब क्या होगा.....

12. कलापक्ष – इस काव्य की भाषा सरल एवं सहज है । कवि ने न्यून भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये न्यून एवं सरल शैली का प्रयोग किया है । यह एक नवीन शैली है । यथा 'मशाल' से अभिप्राय क्रांति व प्रकाश की प्रतीक है । प्रलय से उनका अभिप्राय रूढ़ियों के विकास की उग्र भावना है । इन्होंने नये-नये प्रतीकों का प्रयोग किया है । इसमें मुख्य मुक्तक छंद का प्रयोग किया गया है । देखिए–

वह आता

दो टूक कलेजे के करता

पछताता पथ पर आता ।

कहीं-कहीं विभिन्न अलंकारों रूपक, उपमा आदि के दर्शन भी होते हैं । अस्तु प्रगतिवादी साहित्य की अपनी महत्ता है । उसका उद्देश्य उदात्त है । सामाजिक विषमता की स्थापना अवश्य ही सराहनीय है । परन्तु प्रगतिवाद हिन्दी में अधिक फल-फूल नहीं सका । किन्तु उसकी जड़ें अब भी हरी हैं । चाहे स्वयं प्रगतिवाद ने कोई विशेष महत्वपूर्ण रचना न दी हो, किन्तु इसके प्रभाव से प्रायः सभी वर्गों के साहित्यकारों के दृष्टिकोण में पर्याप्त विकास हुआ है । इसलिए डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्रगतिवाद की प्रशंसा करते हुए कहा है–

इनके सिद्धान्त और उद्देश्य बहुत सुन्दर है । लेकिन ये लोग कम्युनिस्ट पार्टी के साथ जुड़े हुये हैं । अगर दल द्वारा परिचालित होना छोड़ दें तो सब ठीक हो जाये । प्रगतिशील आंदोलन महान् उद्देश्य से परिचालित है ।

20. प्रयोगवादी काव्य

अथवा

नयी कविता, समकालीन कविता, आधुनिक कविता

1943 ई० में अज्ञेय के नेतृत्व में हिन्दी कविता के क्षेत्र में नये आंदोलन का प्रवर्त्तन हुआ जिसमें अब तक विभिन्न संज्ञाएं–प्रयोगवाद, प्रतीकवाद, अतियथार्थवाद, प्रपद्यवाद, रूपवाद, नेकवाद, नयी कविता, समकालीन कविता, आधुनिक कविता आदि प्रदान की गई है। ये संज्ञाएं इसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं दिशाओं को सूचित करती है यथा–आरम्भ में जबकि कवियों का दृष्टिकोण एव लक्ष्य स्पष्ट नहीं था। नूतनता की खोज के लिए केवल प्रयोग की घोषणा की गई थी तो इसे प्रयोगवाद की संज्ञा प्रदान की गई। इसी आंदोलन की एक शाखा ने स्वर्गीय नलिन विलोचन शर्मा के नेतृत्व में प्रयोग को अपना साध्य स्वीकार करते हुए अपनी कविताओं के लिए प्रपद्यवाद का प्रयोग किया। दूसरी ओर डा० जगदीश गुप्त एवं लक्ष्मीकांत वर्मा ने इसे अधिक व्यापक क्षेत्र प्रदान करते हुये 1954 ई० में नयी कविता नाम प्रदान किया। हमारे विचार से हिन्दी काव्य के जिस अतियथार्थवादी आंदोलन को आरम्भ में आलोचकों ने प्रयोगवाद का नाम दिया था।

आगे चलकर वही नयी कविता, समकालीन कविता, आधुनिक कविता के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। जैसे एक नारी को हम उसकी अवस्थानुसार क्रमशः मुन्नी-युवती या बहु आदि के नाम से पुकारते हैं। उसी प्रकार प्रयोगवाद, नयी कविता आदि एक ही कविता की विभिन्न स्थितियों के द्योतक हैं। अज्ञेय जी निम्नलिखित सप्तकों के सम्पादक रहे हैं। तीनों में सात-सात कवियों की कविताएं संकलित हैं–

1. 1943 में प्रकाशित प्रथम तार सप्तक – अज्ञेय, गजानन माधव, मुक्तिबोध, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर, माच्वे, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल तथा रामविलास शर्मा आदि इस काल के प्रमुख कवि हैं।

2. 1951 ई० में प्रकाशित दूसरा तार सप्तक – भवानी प्रसाद मिश्र,

शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती आदि इस काल के प्रमुख कवि हैं ।

3. 1956 ई० में प्रकाशित तीसरा तार सप्तक – प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति, चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदार नाथ सिंह, कुंवर नारायण, विजय देव, नारायण माही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि इस काल के प्रमुख कवि हैं ।

परिभाषाएं –

1. **प्रयोगवादी कविता में भावना है किन्तु हर भावना के आगे एक प्रश्न चिह्न लगा है । इसी प्रश्न चिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं ।**

–धर्मवीर भारती

2. **नई कविता नये समाज के नये मानव की नई वृत्तियों की नई अभिव्यक्ति नई शब्दावली में है ।** –डा० गणपति चंद्रगुप्त

मुख्यकवि –

1. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय – अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्त्तक माने जाते हैं । भग्नदूत, चिन्ता, इत्पलम्, हरि घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, अरी ओ करुणा प्रभामय, आंगन के पार द्वार, कितनी नावों में कितनी वार, सागर मुद्रा, महावृक्ष के नीचे, नदी के बांक पर छाया क्योंकि मैं उसे जानता हूँ आदि कवि की मुख्य रचनाएं हैं । आस्था, व्यक्तिवाद, बौद्धिकता, प्रणयानुभूति, सौंदर्य, चेतना, क्षणवाद, छायावाद, रहस्यवाद आदि इनके काव्य की मुख्य विशेषताएं हैं–

आस्था न कांपे
मानव फिर मिट्टी का भी देवता हो जाता है ।
यूं मैं कवि हूँ आधुनिक हूँ, नया हूँ
काव्य तत्त्व की खोज में कहाँ नहीं गया हूँ ।

2. गजानन माधव मुक्ति बोध – पहले तार सप्तक में प्रकाशित कविताएं हैं चांद का मुख टेढ़ा है आदि । मुक्तिबोध प्रयोगवाद के एक सुप्रसिद्ध कवि हैं । इसलिए डा० नावर सिंह ने सत्य ही कहा है–

नयी कविता में मुक्तिबोध की स्थिति वही है जो छायावाद में निराला की थी ।

इनके काव्य में व्यक्तिवाद की भावना, क्षणवाद आदि का स्वर प्रस्फुटित हुआ है। यथा–

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में चमकता हीरा है।

यह सब क्षणिक क्षणिक जीवन है मानव जीवन है

क्षणभंगुर।

3. डा० धर्मवीर भारती – ठंडा लोहा, सात गीत वर्ष, कनुप्रिया, अंधायुग इनकी प्रमुख रचनाएं हैं। इनके काव्य के प्रमुख विषय, रूपासक्ति, उद्दाम काम वासना एवं स्वच्छंद विलास है। यथा–

अगर सच पूछो मेरी प्राण, व्यर्थ है स्वर्ण नरक अनुमात।

तुम्हारी मुस्कराहट में स्वर्ण, तुम्हारे आँसू में भगवान्।।

वासना, घुटन, दर्द व निराशा उनके प्रेम के मूल तत्त्व हैं। कवि के अनुसार वासना ही जीवन का मापदण्ड है। जैसे–

न हो यह वासना तो जिन्दगी का माप कैसे हो?

किसी के रूप का सम्मान मुझ पर पाप कैसे हो?

4. केदार नाथ – तीनों सप्तक में प्रकाशित कविताएं हैं –अभी बिल्कुल अभी, जमीन पक रही है आदि डा० केदार नाथ द्वारा रचित काव्य संग्रह है। आप के स्वकथन के अनुसार आपकी रुचियों का क्षेत्र सीमित है। कविता, संगीत और अकेलापन तीनों चीजें मुझे बेहद प्रिय हैं। गीतिकाव्य, प्रकृति चित्रण आधुनिकता, बोध काल संबंधी चेतना, शंका, संदेह, मानव नियति, आत्म संघर्ष आदि इनके काव्य की मुख्य विशेषताएं हैं।

इनके काव्य में मानव नियति का सीधा साक्षात्कार होता है। अमानवीय दमन का विरोध करती हैं और आपकी सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण करती हैं। जैसे–

आदमी आदमी मैं लिखना चाहता हूँ।

एक बच्चे का हाथ एक स्त्री का हाथ।।

इनके काव्य में आज भी वास्तविक व्यवस्था की क्रूरता, समझौता, पीड़ा और संघर्ष का बड़ी सूक्ष्मता से चित्रण मिलता है। वह बड़बोलेपन का

शिकार नहीं है । अपनी कविताओं से आगे का तूफान खड़ा करने का दावा नहीं करते । यथा–

वह कहते हैं, आप विश्वास करे
मैं कविता नहीं कर रहा
सिर्फ आग की ओर इशारा कर रहा हूँ ।

जिस प्रकार प्रसाद, पंत, निराला छायावाद की बृहत्त्रयी है । उसी प्रकार अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती प्रयोगवाद की वृहत्त्रयी है । इसके अतिरिक्त गिरिजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर, माच्वे, सुदामा पाण्डे धूमिल भी प्रयोग अथवा नयी कविता के मुख्य कवि हैं ।

मुख्य विशेषताएं –

1. व्यक्तिवाद – प्रयोगवादी काव्य पूर्णतः व्यक्तिवाद की भावना से ओतप्रोत है । यथा–

तब मैं एकाग्रमन ?
जुड़ गया ग्रंथों में
मुझे परीक्षाओं में विलक्षण श्रेय मिला । –भारत भूषण अग्रवाल

2. यथार्थवाद – इन कवियों ने प्यार व भोग के नग्न चित्रों का अंकन किया है । यथा–

इन फिरोजी होठों पर
बरबाद मेरी ज़िन्दगी । –धर्मवीर भारती

यहाँ तक कि धर्मवीर भारती ने तो संयोग दशा का स्पष्ट चित्र ही उतार दिया है । जैसे–

मैंने बसकर तुम्हें जकड़ लिया है ।
और जकड़ती जा रही हूँ
और निकट और निकट ।

3. निराशावाद – इनके काव्य में निराशावाद का भाव स्वतः ही प्रकट हो जाता है । प्रस्तुत पद निराशा एवं वेदना से ओतप्रोत है–

चेहरे थे असंख्य
आँख थी
दर्द सभी में था
प्रश्न तो बिखरे यहाँ हर ओर हैं

किन्तु मेरे पास उत्तर नहीं । —रमासिंह

इनकी स्थिति उस व्यक्ति की भाँति है जिसे विश्वास है कि अगले क्षण प्रलय होने वाली है । अतः वह वर्तमान क्षण में ही सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहता है ।

4. अति बौद्धिकता – इसमें अति बौद्धिकता का प्राधान्य है । इन कवियों का विचार है कि कविता का उद्देश्य ही मस्तिष्क को कुरेदना है । जैसे–

आत्मा को न मानूं ।
तुम्हें न पहचानूं । —राजेन्द्र किशोर
क्योंकि तपस्या चमक नहीं है
वह है गलना और गलकर मिट जाना । —अज्ञेय

5. व्यंग्यात्मक विचारधारा – इन कवियों ने व्यंग्यों के माध्यम से सभ्य समाज पर भी अपना दृष्टिकोण प्रकट किया है । यथा–

सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं न होंगे ।
नगर में वसना भी तुम्हें नहीं आया ।
एक बात पूछूँ उत्तर दोगे ।
फिर कैसे सीखा डंसना
और विष कहाँ पाया ?

6. अस्तित्व का बोध – अस्तित्ववाद के अनुसार व्यक्ति चयन की स्वतंत्रता का वरण करके ही अपना अस्तित्व सिद्ध कर पाता है यही अस्तित्वबोध है । जैसे–

केवल बना रहे विस्तार हमारा बोध मुक्ति का
सीमा हीन खुलेपन का —अज्ञेय

7. अभिव्यक्ति पक्ष – इन्होंने अपने काव्य में हिन्दी भाषा का ही प्रयोग किया है । छंद विधान में तो नये कवि ने आमूलचूल परिवर्तन ही कर दिया है । उसने सभी भाषाओं के छंदों को अपनाया । प्रयोगवाद में केवल मुक्त छंद है । परन्तु नयी कविता में मात्रिक छंद गीत, ग़ज़ल, रुबाई, लोकगीत का प्रयोग भी मिलता है । इसके अतिरिक्त अनेकों प्रतीकों के माध्यम से भी

कविता की रचना की है ।

उपरोक्त विवेचन-विश्लेषण के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रयोगवाद आधुनिक काव्यधार की एक मुख्य धारा है । भविष्य में इसकी भूमिका पर हिन्दी की उपलब्धि सम्भव होगी क्योंकि कविता साहित्य की अन्य विधाओं के विपरीत अग्रगामी होती है । परन्तु इसको वासना के खुले चित्रण रचना करने की प्रवृतियों का परित्याग करना होगा । वे नवीनता को ग्रहण अवश्य करें किन्तु सब को नया कवि के रूप में नवीन प्रयोगों के जल में उलझना नहीं चाहिए । इसलिए अब स्वस्थ व सुन्दर कविताओं का सृजन हो रहा है ।

20. भक्तिकाल - स्वर्णयुग

भक्तिकालीन साहित्यिक वसुन्धरा में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि अद्वितीय विभूतियाँ थीं । इन्होंने अमृतमयी रसधाराओं की पावन पस्विनी प्रवाहित की थी । इससे जनमानस की सूखी भावना रूपी क्यारियों में आनंद की कल्पलताएं लहलहा उठी थीं जिनके अमर फलों का रसास्वादन हम आज भी करके आनंद विभोर हो जाते हैं । भक्तिकाल जहाँ उच्चतम धर्म की व्याख्या करता है वहाँ उसमें उच्च कोटि के काव्य के भी दर्शन होते हैं । इसकी आत्मा भक्ति है उसका जीवन स्रोत रस है । उसका शरीर मानवी है । कबीर, सूर, तुलसी आदि में से किसी पर भी संसार का कोई भी साहित्य आत्मगौरव कर सकता है । ये कवि हिन्दी भारती के कंठहार हैं । इस प्रकार जिन कारणों से भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता हैं वे निम्नलिखित हैं –

1. भक्तिभावना – इस काल के समस्त कवि पहले भक्त थे और बाद में कवि । इसलिए इन भक्त कवियों ने शील की सुन्दर अभिव्यक्ति की है । अहंकार का त्याग, प्रेम मन की शुद्धता, सहनशीलता, सादा सरल जीवन आदि ने काव्य में किसी न किसी रूप में समान रूप से प्रतिपादित है । अभिमान रहित निर्मल मन वाला भक्त ही भगवद्भक्ति का अधिकारी है । जैसे–

निर्मल मन सोइ जन मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा । –रामचरितमानस (सुन्दरकाण्ड)

हम देखते हैं कि इस प्रकार विभिन्न धाराओं में प्रवाहित होने वाली इस

कविता की मूल भावना, भक्तिभावना है और इसके रचयिता कवि सच्चे अर्थों में समाज के पथप्रदर्शक युगपुरुष हैं। जिनका लक्ष्य आदर्श समाज का नव निर्माण था, पर उनकी काव्य-रचना, स्वान्त सुखाय थी। उनमें किसी आश्रयदाता को प्रसन्न करने की या भौतिक समृद्धि पाने की लालसा नहीं थी। यह विशेषता न तो रीतिकालीन साहित्य में है और न आधुनिक साहित्य में है।

2. धर्म परायण – इस काल के कवियों ने धर्म पर अत्यधिक बल दिया। उनका विचार था कि प्रभु भक्ति के लिये अपने कर्त्तव्य और ईमानदारी की परमावश्यकता है। जब तक मानव धर्म का पालन नहीं करता तब तक प्रभुप्राप्ति असंभव है क्योंकि धर्म के द्वारा मनुष्य की आत्मा का विकास होता है।

3. भारतीय संस्कृति – भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचार सभी कुछ भक्तिकाल के सुदृढ़ एवं सुन्दर कलेवर में सुरक्षित है। इस युग के काव्य की एक सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि भक्त कवियों ने भारतीय संस्कृति के प्राचीन उच्चादेशों को कथा के रूप में भारतीय जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। तुलसी के मानस का उत्तरी भाग में वही स्थान है जो योरुप में बाइबल का। यह भारतीय संस्कृति का साक्षात् रूप है। उन्होंने भक्ति, ज्ञान और कर्म की समन्वयात्मक त्रिवेणी से मुमूर्ष राष्ट्र के शरीर में अमर प्राणों का संचार किया।

इस काल में संतकाव्य, प्रेमकाव्य, कृष्णकाव्य और रामकाव्य विभिन्न काव्य धाराएं प्रवाहित हुई। संतकाव्य धारा के प्रतिनिधि कवि कबीर की रचना 'बीजक' है। प्रेम काव्य धारा के प्रतिनिधि काव्य जायसी और रचना ''पद्मावत'' है। कृष्ण काव्य के प्रतिनिधि कवि सूर और रचना 'सूरसागर' है। राम काव्य के प्रतिनिधि कवि तुलसी और रचना 'रामचरितमानस' है।

4. मानवतावाद – इस युग के भक्त कवियों ने मानवतावाद का प्रचार किया। ऊँच-नीच, छुआछूत, अपने पराये का भेदभाव दूर करके केवल सच्ची मानवता का प्रसार-प्रचार हुआ। वस्तुतः भारतीय जन जीवन में एकात्मकता, प्रफुल्लता, शांति व शक्ति का प्रचार किया। जैसे गुरु नानकदेव जी लिखते हैं–

हिन्दू मैं हूँ नहीं, मुसलमान भी ना।
पांच तत्त्व का पुतला नानक मेरा ना।।

5. सत्यं शिवं सुन्दरं की भावना – इस युग के काव्य में सत्यं-शिवं-सुन्दरम् की त्रिवेणी का संगम है। इसमें मानव कल्याण की भावना है। कबीर का नीति साहित्य, जायसी का पारिवारिक साहित्य, सूर का जीवन सौंदर्य की अनुभूति कराने वाला साहित्य, तुलसी का लोक मर्यादापूर्ण साहित्य उत्कृष्ट उदाहरण है।

6. सर्वोत्तम काव्य – इस काल में काव्य की प्रत्येक धारा महाकाव्य, खंडकाव्य, गीतिकाव्य आदि सभी पर सुन्दर ग्रंथ लिखे गये हैं। कबीर के मुक्तक दोहे आज भी प्रसिद्ध है। जायसी की प्रबंधात्मकता भी महत्वपूर्ण है, कृष्णकाव्य के गीत और तुलसी का महाकाव्य की उत्तम कला हिन्दी के इस युग को स्वर्ण युग बना देती है। इस काल के कवि भक्त, समाज सुधारक, लोक नायक एवं भविष्य द्रष्टा थे। इस काल के कलाकार को न तो सीकरी से कोई सरोकार था और न ही किसी राजा की फरमाइश की परवाह। उसका साहित्य निश्छल आत्माभिव्यक्ति है जिसमें सत्य, उल्लास आनन्द और युग निर्माण की प्रेरणा है। जैसे–

कीरति, भनिति, भूति भलिसोई सूरसरि सम सब कहँ हित होई।

–रामचरितमानस (बालकाण्ड)

7. रसनिरुपण – इसमें काव्य के सभी रसों का वर्णन हुआ है। संतकाव्य में शांत एवं शृंगार रस है। सूफी काव्य में प्रेम की धारा है जबकि कृष्ण काव्य में वात्सल्य और शृंगार की गंगा-यमुना बह रही है। रामकाव्य में तो प्रायः सभी रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। सूर ने वात्सल्य वर्णन में और तुलसी ने मर्यादित शृंगार वर्णन में संसार के अन्य लेखकों को मात कर दिया। रसों की दृष्टि से इस काल का साहित्य दस रसों का सरस उद्यान है। कबीर का रहस्योमुख शृंगार, जायसी के वियोग शृंगार की आकुलता, तुलसी के साहित्य सुमनों के मकरंद का उल्लास और सूर का शृंगार एवं वात्सल्य किसके हृदय को रस मगन नहीं कर देता।

8. वात्सल्य की अद्‌भुत देन – सूर ने कृष्ण की बाललीलाओं का इतना अद्‌भुत और हृदयस्पर्शी वर्णन किया है कि न भूतो न भविष्यति। इन्होंने वात्सल्य के संयोग व वियोग दोनों पक्षों का सजीव वर्णन किया है।

9. समन्वयवाद – इस काल में समन्वयवाद की मधुर मंदाकिनी प्रवाहित हुई। विशेषतः तुलसीदास जी ने सगुण व निर्गुण के विद्वेष व वैमनस्य को मिटाते हुए दोनों में समन्वय किया है और बताया है कि यद्यपि ब्रह्म, निर्गुण, निराकार, दीनबंधु दयालु है और वह भक्तों के प्रेम के कारण सगुण रूप धारण कर लेता है। कबीर के राम तो निर्गुण हैं ही तुलसी के 'मानस' के सगुण राम भी 'विनयपत्रिका' में निर्गुण बन जाते हैं। तुलसी इन दोनों रूपों में अंतर नहीं मानते। यथा–

सगुहिं अगुहिं नहिं कुछ भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।

–रामचरित मानस (बालकाण्ड)

अतः तुलसीदास और अन्य भक्त कवि कलम का कुठार लेकर खड़े हुए और उन्होंने विगठनता एवं विषमता के विषवृक्षों को काट कर सद्व्यवहार बिखेर दिया। जैसे हज़ारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–

उनका सारा काव्य समन्वय की विराट् चेतना है।
मानस शुरू से आखिर तक समन्वय काव्य है।।

10. नारी की श्रेष्ठता – इस काल में नारी केवल संभोग की वस्तु मानी जाती थी। अतः इस काल के कवियों ने नारी की पुरुष से श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयास किया जैसे तुलसीदास लिखते हैं–

नारी निन्दा मत करो नारी नर की खान।
नारी से होते हैं ध्रुव प्रह्लाद समान।।

11. कलापक्ष – हिन्दी का भक्तिकाल भाषा की दृष्टि से स्वर्णयुग कहलाता है। संतों ने जनसाधारण की भाषा को, सूफियों ने अवधी को, कृष्णकाव्य में ब्रज और राम काव्य में अवधी भाषा का सफल प्रयोग हुआ है। कविता में तुलसी की शोभा नहीं बढ़ी प्रत्युत तुलसी के द्वारा कविता महिमा सम्पन्न हुई है। सूर का काव्य भक्ति, कविता व संगीत की सुन्दर त्रिवेणी है। कबीर, जायसी आदि की कलाकृतियों पर हिन्दी साहित्य, विश्व साहित्य के सम्मुख गौरव कर सकता है। काव्यकला की दृष्टि से भक्ति कालीन साहित्य उत्कृष्ट कोटि का है। उक्तियों के माध्यम से भक्त कवियों ने भाषा को

साहित्यिक गरिमा प्रदान की ।

''मसि कागद छुओ नहीं, कलम गही नहीं हाथ'', कहकर स्वयं को निरक्षर घोषित करने वाले कबीर को डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने 'वाणी का डिकटेटर' की उपाधि से अलंकृत किया । इसके अतिरिक्त भक्तिकाल में प्रबंध एवं मुक्तक दोनों शैलियों को अपनाया गया है । सूफी एवं राम भक्त कवियों ने प्रबंध शैली का आश्रय लिया, तो संत एवं कृष्णकवियों ने मुक्तक शैली का । परन्तु तुलसीदास ने प्रबंध शैली के साथ मुक्तक शैली को भी अपनाया ।

अतः रीतिकाल में अलंकारों से सजी कविता कामिनी सुरा में झूमती हुई अपनी अल्हड़ मस्ती में आई परन्तु वह बादशाहों के हरम और राजाओं के रनिवासों से बाहर न निकल पायी । उसका क्षेत्र बहुत ही सीमित रहा । आधुनिक काल में गद्य की मौलिकता है—महादेवी वर्मा, पंत, निराला जैसे उद्‌भट कवि उत्कृष्ट कोटि के हैं । इस काल की साहित्य की वीणा अट्‌टालिकाओं से लेकर झोंपड़ियों तक और मंदिरों से लेकर खलिहानों तक गूंजती है ।

उपरलिखित विवेचन-विश्लेषण के उपरांत हम इस निष्कर्ष व निचोड़ पर पहुँचते हैं कि भक्तिकाल का काव्य हृदय, मन और आत्मा की प्यास को शांत करता है । उसमें काव्यत्व, भक्ति, संस्कृति और आध्यात्मिकता का मधुर समन्वय है । काव्यक्षेत्र में निःसन्देह भक्ति काल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग है । किन्तु पद्य गद्य दोनों की उच्चता, गहनता और व्यापकता की सामूहिक दृष्टि से आधुनिक काल श्रेष्ठ है । अतः डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—

समूचे भारतीय साहित्य में यह अपने ढंग का अकेला साहित्य है । इसका नाम भक्ति साहित्य है यह एक नई दुनियाँ है ।